“पूर्वी राजस्थान के डांग प्रदेश में प्रचलित जनजातीय लोकगायकी : कन्हैया (सवाई माधोपुर के सन्दर्भ में एक विस्तृत अध्ययन)”

"Poorvi Rajasthan ke Daang Pradesh mein Prachalit Janjaatiya Lokgayaki: Kanhaiya (Sawai Madhopur ke sandharbh mein ek Vistrit Addhyayan)"

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
की पीएच.डी. (संगीत) उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध–प्रबन्ध
कला संकाय

शोधार्थी

अनीता मीणा

शोध पर्यवेक्षक
डॉ. रौशन भारती
सह आचार्य

संगीत विभाग

राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा (राज0)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

2019

C E R T I F I C A T E

I feel great pleasure in certifying that the thesis entitled "पूर्वी राजस्थान के डांग प्रदेश में प्रचलित जनजातीय लोकगायकी : कन्हैया (सवाई माधोपुर के सन्दर्भ में एक विस्तृत अध्ययन)" by Anita meena under my guidance. She has completed the following requirements as per Ph. D regulations of the University.

(a) Course work as per the university rules.

(b) Residential requirements of the university (200 days)

(c) Regularly submitted annual progress report.

(d) Presented her work in the departmental committee.

(e) Published/ accepted minimum of Two research paper in a referred research journal,

I recommend the submission of thesis.

Date

Dr. Roshan Bharti
(Research Supervisor)

ANTI-PLAGIARISM CERTIFICATE

It is certified that PhD Thesis Titled **"पूर्वी राजस्थान के डांग प्रदेश में प्रचलित जनजातीय लोकगायकी : कन्हैया (सवाई माधोपुर के सन्दर्भ में एक विस्तृत अध्ययन)"** by **Anita Meena** has been examined by us with the following anti-plagiarism tools. We undertake the follows:

a. Thesis has significant new work/knowledge as compared already published or are under consideration to be published elsewhere. No sentence, equation, diagram, table, paragraph or section has been copied verbatim from previous work unless it is placed under quotation marks and duly referenced.

b. The work presented is original and own work of the author (i.e. there is no plagiarism). No ideas, processes, results or words of others have been presented as author's own work.

c. There is no fabrication of data or results which have been compiled and analyzed.

d. There is no falsification by manipulating research materials, equipment or processes, or changing or omitting data or results such that the research is not accurately represented in the research record.

e. The thesis has been checked using plagiarism checker "plagiarismchecker.com", and found within limits as per HEC plagiarism Policy and instructions issued from time to time.

Anita Meena	**Dr. Roshan Bharti**
(Research Scholar)	(Research Supervisor)
Place:	Place:
Date:	Date:

शोध सार

लोक कला का आधार लोक जीवन, लोक परम्पराएँ और लोक रीतियाँ रही हैं। एक जीवन्त परम्परा, कला के लिए रचती है और फिर स्वयं उसका संरक्षण करती है तथा निरन्तरता ही उसका वास्तविक संरक्षण है। सदियों तक लोक समाजों ने अपनी सांस्कृतिक धरोहर का इसी रूप में संरक्षण किया है। ये कलाएँ कभी भी राज्याश्रित नहीं रही हैं और न ही उन्होंने कभी इसकी आशा की।

'लुप्त होना' और 'रूप बदलना' दो चीजें हैं। समय और जीवन के साथ कला के रूप भी प्रभावित होते हैं और बदलते हैं, उनमें नई प्रेरणाओं से नवाचार होते रहते हैं। परम्परा की भित्ति पर 'नवरचना' की शक्ति को समझने की आवश्यकता है।

लोक समुदाय जीवन्त है तो इनकी कला लुप्त कैसे हो जायेगी? लोक समाजों का रूप बदल रहा है, उसमें बड़ी तेजी से तकनीक, बाजार और भाषा आदि का प्रवेश हुआ है, बावजूद इसके लोक में परम्परा, उसकी प्रेरणा और इसी से सम्बद्ध कला रूप, प्रभावों को ग्रहण करते हुए भी पारम्परिक हैं।

लोक के तत्व, कला की रचना करते हैं और कला के कारण लोक की सहज पहचान बनती है। इसलिए लोक कला कोई ऐसा रूढ़ शब्द नहीं है, जिसका केवल यह सीमित अर्थ निकाला जाए कि सामान्यतः ग्रामीण अंचलों में जो कला दृष्टिगत होती है, वही 'लोक–कला' है। वास्तव में लोक कला की व्यंजना अपार है, कला को लेकर 19वीं सदी से जो जटिल विमर्श की परम्परा आरम्भ हुई, उसके कारण कला भी ग्राम्य और अभिजात्य वर्गों में बाँट दी गई, जबकि भारतीय परम्परा में समग्रता ही कला और लोक दोनों की पहचान है। भारतीय परम्परा में लोक दृष्टि और कला दृष्टि एक–सी ही है, न तो भारतीय कला दृष्टि और न ही लोक दृष्टि व्यक्ति है, वह समग्र है, इसलिए आज लोक कला के सम्बन्ध में यह भली–भाँति स्पष्ट होना चाहिए कि लोककला और अभिजात्य कला को लेकर जो एक विभाजक रेखा खींच दी गई है। वह केवल कृत्रिम है और हमारी परम्परा के मूल स्वरों के विपरीत भी इसलिए इस विभाजक रेखा को समाप्त किया जाना आज की सबसे महती आवश्यकता है।

सामान्यतः जनजातीय समुदायों और ग्रामीण लोक जीवन के लिए बदलना है। उसकी शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाऐं, सड़कें, बिजली और खेती के पारम्परिक ढंगों को आधुनिक करना। ऐसा निश्चय और प्रयास करने को आज व्यवस्था और सत्ता, समाज की मुख्यधारा में लाना मानती है। इसमें विकास की अवधारणा और स्वरूप का सवाल भी है। वास्तव में पश्चिमीकरण को ही हमने अपनी आधुनिकता मान लिया है और विकास के यूरोपीय ढंग को इसकी एकमात्र कसौटी।

जीवन की मुख्यधारा में होने का अर्थ है, विकास के इसी रूप और आधुनिकता के बोध में होना। जो समुदाय इसमें नहीं है, वे पिछड़े और अनाधुनिक हैं। विकास की हमारी भी कोई भी अवधारणा हो सकती है, और स्वयं हम अपनी आधुनिकता की रचना कर सकते हैं, परन्तु ऐसा इस प्रभु वर्ग ने कभी सोचा ही नहीं। अब यह उधारी के आधुनिक, जीवन की मुख्यधारा के नाम पर उन समुदायों की अपनी जीवनधारा और शैली को भी बदल रहे हैं।

वास्तव में लोग कभी एक आदिवासी अथवा ग्रामीण से यह पूछने की जरूरत नहीं समझते कि उसकी अपनी विकास की कल्पना क्या है? वह कैसा विकास चाहता है? उसकी दृष्टि में विकसित होने का क्या अर्थ है? सभी समुदायों के लिए हमारे पास विकास का एक ही मॉडल है। इन प्रयासों के चलते जीवन की विविधता का रूप नष्ट हो रहा है और परम्परा का जीवन विकृत।

लोक कला 'परम्परा की सामुदायिक रचना' और 'विरासत' है। जीवन्त परम्पराएं उसका संरक्षण स्वयं करती है, जो कला धरोहर समाज और समुदाय की हैं वे साझी विरासत है और सबके लिए है। अतः ऐसे विषयों पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है।

प्रस्तुत शोध कार्य के पीछे मुख्य उद्देश्य जनजातीय जीवन में रचे–बसे लोक संगीत का परिचय करवाना है जो सिर्फ इन्हीं तक सीमित है और निश्चित क्षेत्र के भीतर ही प्रचलन में है। तथा समय परिवर्तन या विकास की होड़ में धूमिल होने के कगार पर है।

उपरोक्त विषय पर प्रस्तावित शोध प्रबन्ध को आठ अध्यायों में वर्गीकृत किया गया है जो इस प्रकार है –

अध्याय प्रथम – "राजस्थान के सवाई माधोपुर की भौगोलिक स्थिति" में राजस्थान के पूर्वी भाग में स्थित जनजातीय बहुल जिला सवाई माधोपुर की भौगोलिक स्थिति के स्वरूप को स्पष्ट रूप से बताकर इसके डांग क्षेत्र में बसे आदिवासियों की ऐतिहासिक स्थिति का परिचय करवा कर इनकी उत्पत्ति के साथ इनकी संस्कृति पर प्रकाश डाला गया है।

अध्याय द्वितीय – "डांग प्रदेश की जनजातीय लोकगायकी : कन्हैया (सामान्य परिचय)" में सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के आधार पर जनजाति (मीणा) की संस्कृति को समझाने के लिए इनके सामाजिक जीवन के साथ सवाई माधोपुर क्षेत्र में प्रचलित लोक गायकियों का सामान्य परिचय करवाया गया है तथा वर्तमान में इनकी विशेषताओं पर भी दृष्टि डाली गई है।

अध्याय तृतीय – "डांग प्रदेश की जनजातीय लोकगायकी : कन्हैया का ऐतिहासिक विवरण" में जनजाति में प्रचलित ''कन्हैया'' का विभिन्न कालों के रूप में विभक्तिकरण कर उसके स्वरूप और स्थिति को जानने का प्रयास किया गया तथा ऐतिहासिकता के साथ उसकी विशेषताओं को भी प्रस्तुत किया गया है।

अध्याय चतुर्थ – "डांग प्रदेश की जनजातीय लोकगायकी : कन्हैया की वर्तमान स्थिति" में ''कन्हैया'' लोकगायकी के वर्तमान स्वरूप को समझाकर इसकी वर्तमान स्थिति को प्रस्तुत किया गया है। ''कन्हैया'' के लोकगीतों को वर्तमान में किस प्रकार वर्गीकृत किया गया है? यह भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

अध्याय पंचम् – "राजस्थान प्रदेश की अन्य लोकगायकीयों के तुलनात्मक विवरण" में राजस्थान प्रदेश में प्रचलित अन्य लोकगायकीयों को जो सभ्य समाज में प्रचलित हैं तथा जो केवल जनजाति (मीणा) में प्रचलित है, उनका विवरण देकर इन लोकगीतों की तुलना करके प्रस्तुतीकरण किया गया है।

अध्याय षष्टम् – "जनजातीय लोकगायकी : कन्हैया का स्वरलिपि सहित संग्रहण" में वर्तमान में सवाई माधोपुर जिले के जनजातीय बहुल क्षेत्रों में प्रचलित लोकगीतों का संकलन लिखित रूप में किया गया तथा इनका संगीतात्मक ज्ञान के साथ इन्हीं की स्वरलिपि में संग्रहित करने का प्रयास किया गया है।

अध्याय सप्तम् – "जनजातीय लोकगायकी : कन्हैया से सम्बन्धित विभिन्न समूहों की गायकी के प्रकारों का विवरण" में विशिष्ट रूप से 'कन्हैया' से सम्बन्धित विभिन्न जनजातीय समूहों के लोकगीतों को, आयोजित दंगलों के माध्यम से ऑडियो–वीडियो संकलित कर संग्रहित किया गया है, ताकि इनकी वर्तमान गायनशैली के स्वरूप को स्पष्ट रूप से समझा जा सके।

अध्याय अष्ठम् – उपरोक्त अध्ययन के पश्चात् निष्कर्ष एवं भावी सम्भावनाओं पर प्रकाश डालते हुए जनजातीय लोकगायकी के विकास हेतु वर्तमान समय की आवश्यकताओं तथा संरक्षण हेतु उचित सुझाव प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

चूँकि राजस्थान ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारत में ऐसी अनेक कलाएँ अपने अस्तित्व हेतु संघर्षरत है अपितु आज भी उनकी स्पष्ट जानकारियाँ उपलब्ध नहीं हो सकी है। उसके अनेक कारण बताए जा सकते हैं, परन्तु इस शोध प्रबन्ध के माध्यम से जनजाति में प्रचलित इस लोक गायकी का स्पष्ट विवरण प्रस्तुत किया गया है ताकि सामान्य जन भी आदिवासी लोकसंस्कृति को समझ सके, साथ ही लोकसंगीत की इस गायनशैली का ज्ञान भी प्राप्त कर सके। यह शोध

प्रबन्ध संगीत के विद्यार्थियों को राजस्थान की विशेषतः जनजातीय लोकगायकी के बारे में जानकारी प्राप्त करने में उपयोगी रहेगा साथ ही इस विषय पर शोध हेतु भावी सम्भावनाओं हेतु भी उपयोगी रहेगा।

ऐसी अनेक लोक कलाएँ हैं जिनकी शास्त्रों के रूप में कोई उपलब्धता नहीं रहती, अतः यह इस दिशा में भी यह एक प्रभावी अध्ययन सिद्ध होगा।

Candidate's Declaration

I, hereby, certify that the work, which is being presented in the thesis, entitled **"पूर्वी राजस्थान के डांग प्रदेश में प्रचलित जनजातीय लोकगायकी : कन्हैया (सवाई माधोपुर के सन्दर्भ में एक विस्तृत अध्ययन)"** in partial fulfillment of the requirement for the award of the Degree of Doctor of Philosophy, carried under the supervision of Associate Professor/**Dr. Roshan Bharti** and submitted to the University of Kota, Kota represents my ideas in my own words and where others ideas or words have been included, I have adequately cited and referenced the original sources. The work presented in this thesis has not been submitted elsewhere for the award of any other degree or diploma from any Institutions. I also declare that I have adhered to all principles of academic honesty and integrity and have not misrepresented or fabricated or falsified any idea/data/fact/source in my submission. I understand that any violation of the above will cause for disciplinary action by the University and can also evoke penal action from the sources which have thus not been properly cited or from whom proper permission has not been taken when needed.

----------.

(Signature)

Anita Meena

(Name of the student)

----------.

Date : _____

This is to certify that the above statement made by **Anita Meena** (Registration No. RS/1365/13) is correct to the best of my knowledge.

Date : _____

Dr. Roshan Bharti
(Research Supervisor)

प्राक्कथन

संगीत जनजातियों की सर्वोत्कृष्ट कला है, क्योंकि यह प्रकृति और संस्कृति के बीच मध्यस्थता करता है और इसके माध्यम से दो धाराओं के बीच संविलयन होता है। बाह्य प्रकृति की पहली धारा आगमिक, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक है और आन्तरिक प्रकृति की दूसरी धारा आदिम, शारीरिक तथा प्राकृतिक है।

वर्षो पूर्व आदिम मानव ने धरती पर विचरण करना प्रारम्भ किया था। वह आज के मानव से पूरी तरह भिन्न था। वह वृक्षों अथवा गुफाओं में निवास करता था और प्रकृति के द्वारा प्रदत्त कन्दमूल तथा फल खाता था या आखेट के माध्यम से आरण्यक पशुओं को मारकर खा जाता था। उसके पास न तो रहने के लिए घर था और न पहनने के लिए वस्त्र। वह न तो खेती से परिचित था, न कुटीरोद्योग से। अपने विचारों को सम्प्रेषित करने के लिए उसके पास कुछ असम्बद्ध ध्वनियाँ थीं, जिसके माध्यम से वह सुख, दुःख या क्रोध की अभिव्यक्ति कर सकता था। इन्हीं ध्वनियों के सहारे वह दूसरों को भी खतरों के प्रति सावधान करता था या सहायतार्थ उन्हें बुलाता था।

इन वर्षों की अवधि में मानव पर बहुत–सी आपदाएँ आयीं। ऋतु–परिवर्तन हुए। दावानल, जलप्लावन, दुर्भिक्ष तथा विविध रोगों ने उसका संहार किया। यदि हम मानवीय पीढ़ियों की कल्पना एक लम्बी कतार के रूप में करें तो परिवर्तन की समूची प्रक्रिया की एक तस्वीर बन सकती है। प्रथम गुफावासी से लेकर प्रथम अन्तरिक्ष यात्री तक की सोलह हजार पीढ़ियाँ जिसमें प्रथम आदिम मानव वो जो अपने हाथ में पत्थर की कुल्हाड़ी लिए पशुजाति से अभी–अभी उठा होगा। आगे हम पाते हैं कि जीवन परिवर्तन इन्द्रियग्राह्य तो नहीं है, फिर भी वह बदल रहा होता है। उसके उपकरण और आयुध, उसकी जीवनरक्षा पद्धति, उसका पहनावा और आवास, उसकी आदतें तथा परम्पराऐं सभी समुन्नत हो जाती है। उसका सामूहिक जीवन दृढ़तर होता है और उसकी विचार क्षमता विस्तृत तथा गहन होती है। नए–नए धर्म, कला के नए–नए रूप और साहित्य का विकास होता है।

राजस्थान में अनेक जनजातियाँ निवास करती हैं इन्हीं में से मीणा जनजाति प्राचीनतम जनजातियों में से एक है और प्रदेश के पूर्वी भाग में इनकी बहुलता देखी जाती है। वैदिक काल से लेकर वर्तमान समय इस जनजाति में अनेक उतार–चढ़ाव देखे गए हैं। इसका अस्तित्व अनेक बार बना है और अनेक बार मिटा भी है।

प्राचीनकाल में यह जनजाति आर्यों, क्षत्रियों, मुस्लिमों तथा राजपूतों से अनवरत संघर्ष करती रही है। पूर्व के कालों में यह जनजाति शासक वर्गों में से थी परन्तु मध्यकाल के

आते–आते, वक्त के थपेड़ों ने इसे पहाड़ों, जंगलों में धकेल दिया और अब इसकी अपनी एक अलग संस्कृति है, अपनी एक पहचान है जो आज भी अक्षुण्ण है।

प्रकृति की गोद में पलने वाली यह जनजाति स्वयं को धरती की सन्तान मानती रही है। जीवन की साँसों में प्रकृति की उन्मुक्तता, स्वच्छन्दता, अभिनवता, गति, निर्मलता, विश्वास – अंधविश्वास और भावों–अभावों की अनुगूँज देखने सुनने को मिलती है और इन सबका माध्यम है इनका लोकसंगीत। जिसके माध्यम से उसने अपने समस्त जीवन के अनुभवों, हर्ष–उल्लास, जीवन की उमंग आदि को अपनी 'लय' और 'ताल' प्रदान की है।

राजस्थान की जनजाति (मीणा) में संगीत कूट–कूट कर भरा हुआ है परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि इनके लोक संगीत की समृद्धता होते हुए भी अभी तक विद्वानों के सक्रिय अध्ययन का विषय इनका लोकसंगीत नहीं बन सका है।

ऐसा प्रतीत होता है कि प्रदेश के दूर दराज तथा दुर्गम भू–भाग पर इस जनजाति का बसा होना लिखित साहित्य का अभाव तथा लोक संगीत के लिपि निबन्धन की कठिनाइयों के कारण ही सम्भवतः विद्वान लोग इस क्षेत्र के प्रति उदासीन रहे हैं किन्तु इस उपेक्षित लोक संगीत के प्रति मेरी रूचि और आकर्षण ने इन कठिनाइयों की चिन्ता किए बिना इसके संकलन करने की मेरी इच्छा को प्रबल किया है। अतः इस प्रबलता के साथ यह शोध कार्य करने की दृढ इच्छा से ही मैंने श्रद्धेय गुरूवर डॉ. रौशन भारती जी से भेंट की और अपना मन्तव्य उनके समक्ष रखा। मेरी रूचि और इच्छा में सम्वर्द्धन के लिए मुझे उन्होंने निर्देश देना स्वीकार कर लिया।

इस कार्य के लिए मैंने राजस्थान के पूर्वी भाग में स्थित सवाई माधोपुर जिले के जनजातीय बहुल क्षेत्रों जो डांग प्रदेश में सम्मिलित है तथा जहाँ 'कन्हैया' का लोक गायन किया जाता है वहाँ स्वयं जाकर अपने मित्रों, बड़े भाईयों के सहयोग तथा परिवार के अन्य सम्बन्धियों के माध्यम से जानकारी एकत्रित की है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को आठ अध्यायों में विभक्त किया गया हैं। मैंने संग्रहण के लिए मेरे व्यक्तिगत स्तर पर यथासम्भव पूर्ण एवं प्रामाणिक बनाने हेतु कोई कमी नहीं छोड़ी है। अब तक राजस्थान के मीणा जनजाति की इस गायनशैली पर कोई अध्ययन कार्य नहीं हुआ है अतः यह अध्ययन अपने क्षेत्र में मौलिक एवं नूतन है। जो संगीत के विद्यार्थियों को जनजातीय लोकगायन के वर्तमान एवं वास्तविक स्वरूप को समझने में लाभकारी रहेगा। क्योंकि कभी–कभी लिखित स्वरूप में समझने में कठिनाई होती है इसके लिए ऑडियो–वीडियो के माध्यम से 'कन्हैया' गायनशैली को संग्रहित करने का प्रयास भी किया गया है। जिससे जनजाति (मीणा) के लोकगायन को स्पष्ट रूप से समझा जा सके।

आभार

परिवार हमारे सभी प्रकार के संस्कारों की प्रथम पाठशाला है। अतः इस दृष्टि से मैं अपने माता–पिता श्रीमती कान्ती देवी और श्री भजनलाल मीणा को अपने जीवन की प्रत्येक उपलब्धि समर्पित करती हूँ। मेरी माँ के दिए संस्कार व प्रेम और पिता का मुझ पर और मेरे प्रत्येक फैसले पर दिया जाने वाला सहयोग तथा उनके ऊर्जावान वक्तव्यों ने सदैव मुझे जीवन की प्रत्येक परिस्थितियों में विश्वास दिलाया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने के लिए मैं अपने शोध मार्गदर्शक डॉ. रौशन भारती, सहआचार्य, संगीत विभाग, राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा (राजस्थान) के प्रति अपने हृदय के गहनतम तल से आभारी एवं कृतज्ञ हूँ। जिनके अत्यधिक सहयोग, प्रोत्साहन, प्रेरणा व मार्गदर्शन से यह सम्भव हो पाया है।

साथ ही मैं अपने परिवार के अन्य सदस्यों दोनों बड़े भाई, दोनों बड़ी भाभी, सभी मित्रगण तथा सगे सम्बन्धी जिन्होंने मुझे उत्साहित होकर आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान की।

मेरे जीवन के उस हिस्से का भी मैं आभार प्रकट करती हूँ जिसके बिना शायद जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती, मेरी पुत्री कनिष्ठा जिसने अपनी प्यारी से मुस्कान से हमेशा ही मुझे बल संचित कर प्रफुल्लित बनाए रखा।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अध्ययन सामग्री एकत्रित करने की दृष्टि से राजस्थान विश्वविद्यालय, कोटा विश्वविद्यालय, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय, आदि के पुस्तकालयों, महाविद्यालयों तथा सम्बन्धित विभागों के प्रभारी व सहयोगी कर्मचारियों के साथ लोककला के स्थानीय जनजातीय कलाकारों का धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ। जिन्होंने मुझे सहयोग प्रदान किया।

इस शोध प्रबन्ध के सुन्दर, स्पष्ट टंकण कार्य के लिए श्रीमान् मुकेश जी तथा गौरव जी (सरस्वती कम्प्यूटर्स, तीन बत्ती सर्किल, कोटा) का भी धन्यवाद देती हूँ। साथ ही ऑडियो–वीडियो के कार्य के लिए प्रशान्त जी तथा विवेक जी (जगदम्बा फिल्म्स, अजमेरी गेट, जयपुर) का भी धन्यवाद देती हूँ, जिनके अथक प्रयत्नों से मैं समय पर यह कार्य पूर्ण कर पाई।

इसी क्रम में मैं उन सभी व्यक्तियों, विशेषज्ञों, शिक्षकों, परिवार के सदस्यों, ग्रामीणों का धन्यवाद प्रकट करती हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से अपना सहयोग मुझे प्रदान किया, उन सभी के प्रति मैं अपना आभार प्रकट करती हूँ।

शोधार्थी

अनीता मीणा

अनुक्रमणिका

(Index)

क्र.सं.	विषयसूची	पृष्ठ सं.
1	मुख्यपृष्ठ	
2	प्रमाण पत्र	i
3	एन्टी–प्लेग्रिज्म प्रमाण पत्र	ii
4	शोध सार	iii-vi
5	घोषणा पत्र	vii
6	प्राक्कथन	viii-ix
7	आभार	x
8	अनुक्रमणिका	xi-xii
9	रेखाचित्र सूची	xiii
10	**अध्याय प्रथम** - ● राजस्थान में सवाई माधोपुर की भौगोलिक स्थिति ● डांग प्रदेश का परियच	1-12
11	**अध्याय द्वितीय** - ● डांग प्रदेश की जनजातीय लोकगायकी : कन्हैया (सामान्य परिचय)	13-39
12	**अध्याय तृतीय** - ● डांग प्रदेश की जनजातीय लोकगायकी : कन्हैया का ऐतिहासिक विवरण	40-52
13	**अध्याय चतुर्थ** - ● डांग प्रदेश की जनजातीय लोकगायकी : कन्हैया की वर्तमान स्थिति	53-70
14	**अध्याय पंचम्** - ● राजस्थान प्रदेश की अन्य लोकगायकीयों से तुलनात्मक विवरण	71-93
15	**अध्याय षष्ठम्** - ● जनजातीय लोकगायकी : कन्हैया का स्वरलिपि सहित संग्रहण	94-134

क्र.सं.	विषयसूची	पृष्ठ सं.
16	**अध्याय सप्तम्** - ● जनजातीय लोकगायकी : कन्हैया से सम्बन्धित विभिन्न समूहों की गायकी के प्रकारों का विवरण (ऑडियो–वीडियो के माध्यम से)	135
17	**अध्याय अष्ठम्**- ● उपसंहार	136-144
18	**सारांश**	145-148
19	**संदर्भ ग्रन्थ सूची**	149-150
20	**परिशिष्ट** ● कन्हैया लोकगीतों में प्रयुक्त शब्दार्थ	151-154
21	**शोध पत्र**	
22	**साक्षात्कार**	

रेखाचित्र सूची

क्रम सं.	विषयवस्तु	पृष्ठ सं.
चित्र 1.1	राजस्थान में सवाई माधोपुर की स्थिति दर्शाता मानचित्र	1
चित्र 1.2	खण्डार का दुर्ग	5
चित्र 1.3	ज्यामितीय अलंकरण की मांडना कला	6
चित्र 1.4	मोरनी मांडना कला	6
चित्र 1.5	गणेश चतुर्थी मेला	7
चित्र 1.6	चौथ माता का मेला	7
चित्र 1.7	कल्याण जी महाराज का मेला	8
चित्र 1.8	घुश्मेश्वर महादेव शिवरात्री मेला	8
चित्र 1.9	डांग प्रदेश की धरातलीय स्थिति	10
चित्र 2.1	जनजातीय लोगो द्वारा 'कन्हैया' का प्रस्तुतीकरण	38
चित्र 3.1	विष्णु का मत्स्य अवतार	44
चित्र 5.1	'मांगणियार गायिकी' का प्रस्तुतीकरण करते लोक कलाकार	73
चित्र 5.2	'मांड गायिकी' का प्रस्तुतीकरण करते लोक कलाकार	73
चित्र 5.3	'लंगा गायिकी' का प्रस्तुतीकरण करते लोक कलाकार	74
चित्र 5.4	तालबन्दी गायकी के अन्तर्गत 'कन्हैया' का प्रस्तुतीकरण करते जनजातीय लोक कलाकार	74
चित्र 5.5	'हैला ख्याल' गायनशैली का प्रस्तुतीकरण करते हुए जनजातीय लोक कलाकार	83
चित्र 5.6	'रसिया' गायनशैली का प्रस्तुतीकरण करते हुए जनजातीय लोक कलाकार	84
चित्र 5.7	'पद' गायनशैली का प्रस्तुतीकरण करते हुए जनजातीय लोक कलाकार	86
चित्र 5.8	'ढाँचा' गायनशैली का प्रस्तुतीकरण करते हुए जनजातीय लोक कलाकार	87
चित्र 5.9	'उच्छांटा' गायनशैली का प्रस्तुतीकरण करते हुए जनजातीय लोक कलाकार	88
चित्र 5.10	'सुड्डा' गायनशैली का प्रस्तुतीकरण करते हुए लोक कलाकार	90
चित्र 5.11	लयबद्ध ताल प्रदर्शन	91
चित्र 5.12	'कन्हैया' गायन शैली का प्रस्तुतीकरण करते हुए जनजातीय लोक कलाकार	92
चित्र 5.13	'कन्हैया' गायन शैली में प्रयुक्त किया जाने वाला लोक वाद्य यंत्र	92

अध्याय प्रथम

- राजस्थान में सवाई माधोपुर की भौगोलिक स्थिति
- डांग प्रदेश का परिचय

अध्याय प्रथम

राजस्थान में सवाई माधोपुर की भौगोलिक स्थिति

पश्चिमी मध्य रेलवे के दिल्ली–मुम्बई रेलमार्ग पर स्थित सवाई माधोपुर राजस्थान के जिलों में एक प्रमुख शहर है। जयपुर–कोटा रेलमार्ग का यह एक प्रमुख स्टेशन है। वर्तमान में यह पर्यटन की दृष्टि से अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

इसकी स्थापना जयपुर राज्य के शासक सवाई माधोसिंह द्वितीय ने की थी।

सवाई माधोपुर जिला राजस्थान में अनेक कारणों से प्रसिद्ध रहा है। जिनमें प्रमुख यहाँ का जोगी महल पर्यटकों का विशेष आकर्षण का केन्द्र है। यहाँ का रणथम्भौर दुर्ग, रामेश्वर घाट, चौथ माता जी मंदिर, काला–भैरव मंदिर और घुश्मेश्वर महादेव का मंदिर आदि प्रसिद्ध है।

रणथम्भौर के किले में स्थित बत्तीस खम्बों की छतरी और त्रिनेत्र गणेश जी का मंदिर यहाँ आने वाले सैलानियों के आकर्षण का प्रमुख केन्द्र है।

सवाई माधोपुर लकड़ी के खिलौने एवं खस के इत्र के लिए भी प्रसिद्ध रहा है।

भौगोलिक परिदृश्य

चित्र सं. 1.1 : राजस्थान में सवाई माधोपुर की स्थिति दर्शाता मानचित्र

संभाग – 4 जून 2005 को 7 वें संभाग के रूप में स्थापित किए गए भरतपुर संभाग के अन्तर्गत 4 जिले सवाई माधोपुर, करौली, भरतपुर, धौलपुर सम्मिलित है।

भौगौलिक स्थिति – दक्षिणी–पूर्वी राजस्थान में स्थित प्रमुख जिला जिसका नाम सवाई माधोसिंह प्रथम (1751–1761ई.) के नाम पर रखा गया है।

अक्षांशीय स्थिति – $25^0 45'$ से 27^0 उत्तरी अक्षांश

देशान्तरीय स्थिति – $75^0 59'$ से $77^0 23'$ पूर्वी देशान्तर

क्षेत्रफल – 4,498 वर्ग कि.मी.

जनसंख्या – 13,35,551 (2011 के अनुसार)

भौगोलिक आयाम – बाघों की क्रीड़ा स्थली।

पड़ौसी राज्य – मध्यप्रदेश

पड़ौसी जिले – करौली, कोटा, भरतपुर, बूंदी, टोंक, दौसा

स्थलाकृति – सवाई माधोपुर राजस्थान के पूर्वी मैदानी भाग में स्थित है। यहीं अरावली और विन्ध्याचल पर्वत श्रृंखला मिलती हैं।

जिले की समुद्र तल से ऊँचाई 400 से 600 मीटर के बीच है। जिले की सबसे ऊँची चोटी बामनवास तहसील में है जो 827 मीटर ऊँची है।

नदियाँ – चम्बल, बनास, मोरेल, गम्भीर, ढील और जीवद। चम्बल, बनास और सीप नदियों की त्रिवेणी रामेश्वर घाट में स्थित है।

जलाशय/झीलें – मोरेल बांध, पदम तालाब, मलिक तालाब, गिलाई सागर, मान सरोवर बांध, राजबाग तालाब, सूरवाल झील।

जलवायु – गर्मियों का तापमान 47^0 तथा सदिर्यो का तापमान 4^0 सेंटीग्रेट रहता है।

मिट्टी – कांप मिट्टी या कछारी मिट्टी

वनस्पति – वन सम्पदा की दृष्टि से सवाई माधोपुर हरा–भरा क्षेत्र है। यहाँ उष्ण कटिबंधीय शुष्क एवं मिश्रित पतझड़ वाले वन मिलते हैं। यहाँ लगभग 18 प्रतिशत भाग पर वन मिलते हैं। यहाँ धौंक, सालर, बरगद, जामुन, आम, चुरैल आदि प्रमुख वृक्ष है।

वन्यजीव –

रणथम्भौर बाघ परियोजना –

रणथम्भौर में राजस्थान की पहली बाघ परियोजना 1973 में स्थापित की गई।

राज्य के सर्वाधिक बाघ यहीं मिलते हैं।

रणथम्भौर राष्ट्रीय उद्यान –

1 नवम्बर, 1980 से राज्य सरकार ने रणथम्भौर को राष्ट्रीय उद्यान का दर्जा दिया।

यह राज्य का पहला राष्ट्रीय उद्यान है।

यह राष्ट्रीय उद्यान बाघों के लिए प्रसिद्ध है।

इसके अलावा यहाँ बघेरा, रीछ, जरख, लोमड़ी, नेवले, मगरमच्छ, चिंकारा आदि भी मिलते हैं।

यह राष्ट्रीय उद्यान 992 वर्ग कि.मी. में फैला है।

शिकार निषिध क्षेत्र – कंवाल जी

जल परियोजनाएँ –

मोरेल बांध परियोजना, आकादिया सिंचाई परियोजना, शंकर सागर सिंचाई परियोजना, ईसरदा बांध (पेयजल उपलब्धि हेतु), इंदिरा गांधी लिफ्ट नहर योजना

कृषि/फसलें –

सरसों, गेहूँ, ग्वार, मूंगफली, अलसी, तिल, बाजरा, मक्का।

खनिज –

मैंगनीज, सीसा, जस्ता, चूना पत्थर

उद्योग –

लघु एवं कुटीर उद्योग, सीमेंट उद्योग, प्रमुख रूप से प्रसिद्ध रहे हैं।

हस्तशिल्प –

खस का इत्र, पोमचे (यहाँ के पोमचे जनजाति महिलाओं में विशेष लोकप्रिय हैं) जूतियाँ, रंगाई, छपाई आदि।

परिवहन –

सवाई माधोपुर दिल्ली–मुम्बई रेलमार्ग पर स्थित है। यह सड़क मार्ग द्वारा भी महत्वपूर्ण शहरों से जुड़ा हुआ है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि –

सवाई माधोपुर जो पुराने करौली तथा जयपुर राज्य की सवाई माधोपुर, गंगापुर व हिण्डौन निजामतों में आता था, विभिन्न रियासतों के सात चरणों में विलय के बाद राजस्थान का हिस्सा बना।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् 1948 में सर्वप्रथम अलवर, भरतपुर, करौली तथा धौलपुर राज्यों का "मत्स्य संघ" के नाम से एक संयुक्त प्रदेश बना।

सभी भूतपूर्व करौली राज्य तथा जयपुर राज्य की सवाई माधोपुर, गंगापुर तथा हिण्डौन निजामतों को मिलाकर जयपुर के पूर्व महाराजा स्वर्गीय माधोसिंह प्रथम के नाम पर 15 मई 1949 को सवाई माधोपुर अलग जिला बनाया गया।

कला एवं संस्कृति –

दर्शनीय स्थल –

रणथम्भौर राष्ट्रीय उद्यान, बाघ परियोजना, रणथम्भौर का दुर्ग, जोगी महल, त्रिनेत्र गणेश जी का मंदिर, चौथ का बरवाड़ा, रामेश्वर घाट, काला–भैरव मंदिर, घुश्मेश्वर महादेव (शिवाड़), चमत्कार जी जैन मंदिर

त्रिनेत्र गणेश का मंदिर (रणथम्भौर) –

यहाँ के गणेश जी को शादी–विवाह के अवसर पर आमंत्रित करने की प्रथा है। प्रत्येक बुधवार यहाँ मेला आयोजित किया जाता है।

चौथ माता का मंदिर (चौथ का बरवाड़ा) –

चौथ माता महिलाओं में विशेष रूप से पूजनीय है।

चमत्कारी जैन मंदिर –

यहाँ भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा स्थित है।

काला–गौरा भैरव मंदिर (सवाई माधोपुर) –

पहाड़ी पर स्थित यह नौ मंजिला मंदिर विशेष रूप से दर्शनीय स्थल है। कहा जाता है कि इस मंदिर का उपयोग तंत्र विद्या के लिए किया जाता था।

घुश्मेश्वर महादेव का मंदिर (शिवाड़) –

यहाँ महाशिवरात्री को एक विशाल मेले का आयोजन किया जाता है।

दुर्ग –

रणथम्भौर का दुर्ग,

शिवाड़ का दुर्ग,

खण्डार का दुर्ग

चित्र सं. 1.2 : खण्डार का दुर्ग

छतरी –

बत्तीस खम्भों की छतरी (रणथम्भौर)

महल–

हम्मीर महल, जोगी महल, रानी महल, सुपारी महल, बादल महल (रणथम्भौर)

दरगाह–

पीर सदरूद्धीन की दरगाह (रणथम्भौर)

लोक नाट्य –

नौटंकी और हैला ख्याल

लोक कला –

मांडना (यह ज्यामितीय अलंकरण होता है जो खडिया और गेरू से बनाया जाता है।)

चित्र सं. 1.3 : ज्यामितीय अलंकरण की मांडना कला

मीणाओं का मोरनी मांडणा प्रसिद्ध है। यहाँ कच्चे व पक्के मकानों पर बने भित्ति चित्र मिलते हैं।

चित्र सं. 1.4 : मोरनी मांडना कला

मेले और त्यौहार –

गणेश चतुर्थी का मेला (रणथम्भौर)

रणथम्भौर में गणेश जी का मेला गणेश चतुर्थी को भरता है जो भादों मास में शुक्ला–चतुर्थी को आती है।

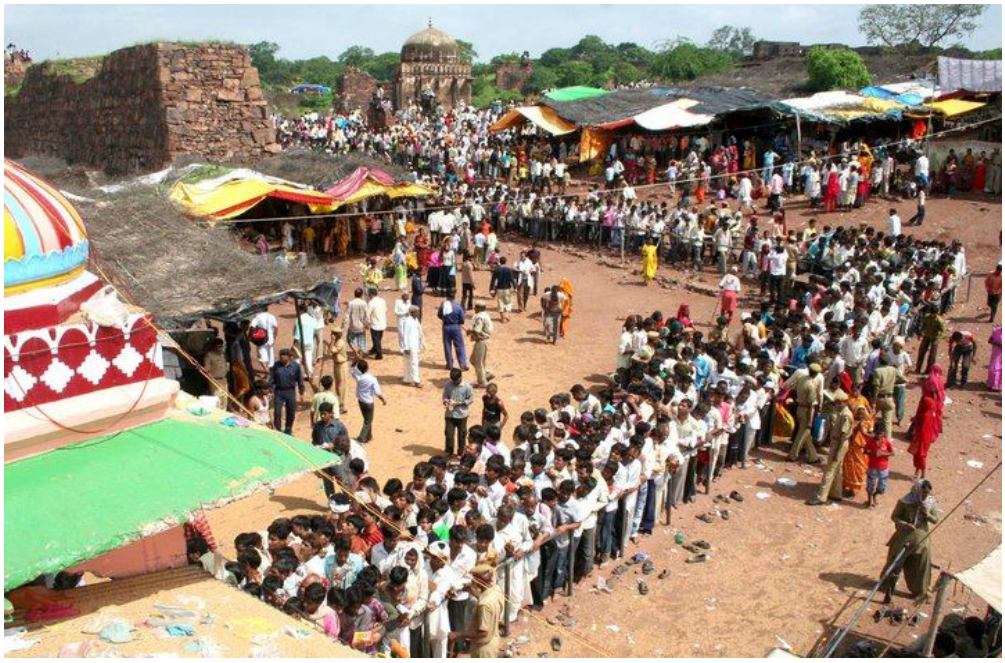

चित्र सं. 1.5 : गणेश चतुर्थी मेला

अन्य मेले –

चौथ माता का मेला (चौथ का बरवाड़ा),

चित्र सं. 1.6 : चौथ माता का मेला

चित्र सं. 1.7 : कल्याण जी महाराज का मेला

चित्र सं. 1.8 : घुश्मेश्वर महादेव शिवरात्री मेला

जनजाति–

मीणा जनजाति की बहुलता अत्यधिक है।

तीर्थ स्थान–

रामेश्वर घाट–

यहाँ कार्तिक मास की पूर्णिमा को विशाल मेला भरता है।

सवाई माधोपुर जिले का जो स्वरूप हमें प्राप्त होता है वह इसके दो बार विभाजन प्रथम बार 1992 में दौसा तथा द्वितीय 1997 में करौली जिलों के सृजन करने के पश्चात् हुआ है।

वर्तमान में इस जिले को कुल 8 तहसीलों में विभक्त कर दिया गया है–

1. सवाई माधोपुर
2. गंगापुर
3. बौंली
4. चौथ का बरवाड़ा
5. मलारना डूंगर
6. खंडार
7. बामनवास
8. वजीरपुर

डांग प्रदेश का परिचय

सामान्य परिचय–

साधारण शब्दों में या आमजन की समझ तथा बोलचाल की भाषा में 'डांग' शब्द एक आँचलिक भाषा का शब्द है जिसकी उत्पत्ति 'डूँगर' शब्द से मानी जाती है जिसका अर्थ पहाड़ से लिया जाता है।

वहीं कुछ साधारण तथ्यों से ये भी जानकारी निकलकर आती है कि चम्बल नदी जब अपने मार्ग से निकलती हुई आस–पास के क्षेत्र में चट्टानों को काटकर जो धरातलीय स्वरूप बनाती है, वह भाग दरदरी मिट्टी, ऊबड़–खाबड़, ऊँचा–नीचा तथा कटीली झाड़ियों सा दिखाई देता है और इसी क्षेत्र को 'डांग' कहा जाता है।

क्योंकि सवाई माधोपुर को भौगोलिक दृष्टि से देखने पर चम्बल नदी तथा अरावली पर्वत मालाओं की उपस्थिति दिखायी पड़ती है जिससे इस जिले का काफी क्षेत्र 'डांग' के अन्तर्गत आता है।

चित्र सं. 1.9 : डांग प्रदेश की धरातलीय स्थिति

वर्तमान में राजस्थान राज्य सरकार के ग्रामीण विकास विभाग द्वारा सवाई माधोपुर की दो पंचायत समितियों

खण्डार

गंगापुर सिटी

के क्रमशः 80 तथा 20 गांवों को 'डांग क्षेत्रीय विकास योजना' में शामिल किया गया है।

परन्तु सवाई माधोपुर के साथ–साथ राज्य के अन्य जिलें भी 'डांग' के क्षेत्र में सम्मिलित है जो इस प्रकार है–

(i) झालावाड़

(ii) बाँरा

(iii) बूँदी

(iv) कोटा

(v) धौलपुर

(vi) करौली

(vii) भरतपुर

(viii) सवाई माधोपुर

राजस्थान का डांग प्रदेश अरावली और विंध्य की पहाड़ियों में फैला हुआ है।

ऐतिहासिक परिचय–

गौरवशाली परम्परा के धनी राजस्थान प्रदेश प्रत्येक दृष्टि से विविधता लिए हुए है। जाति, धर्म, भाषा, प्रकृति सभी क्षेत्रों में बहुआयामी रहा है। भौगोलिक विभिन्नता ने इसके रंगो को ओर भी अधिक विविधता प्रदान की है।

राजस्थान में प्राचीन काल से ही अनेक जातियों का निवास रहा है। समय–समय पर अनेक नयी जातियों का आगमन भी हुआ है।

नृवंशशास्त्र की दृष्टि से राजस्थान में प्रमुख रूप से दो प्रकार की जातियाँ है – आर्य और द्रविड़।

आर्यों को यहाँ सामान्य जातियों के रूप में तथा द्रविड़ो को आदिवासी या आदिम जनजातियों के रूप में माना गया है। जो प्रारम्भ से इसी 'डांग' क्षेत्र में निवास करते थे तथा शासन भी किया करते थे।

करीब 1500 वर्ष पूर्व यूनानी सम्राट सिकन्दर के विरूद्ध बागियों के तौर पर पहला ऑपरेशन चम्बल के 'डांग' से ही शुरू किया गया था तभी से यह क्षेत्र डाकू प्रभावित भी कहलाया, साथ ही कई मिथक व कहानियों के सृजन का कारण भी बना।

इतिहास को प्रस्तुत करना यहाँ मुख्य उद्देश्य नहीं है किन्तु उसके लोकजीवन के अध्ययन के लिए उसके अतीत को समझना और परखना भी आवश्यक है, अतः पौराणिक एवं ऐतिहासिक ग्रन्थों में यत्र–तत्र बिखरे सूत्रों को पिरोने से इतिहास के जो अधूरे पृष्ठ बनते हैं

उनसे इतना स्पष्ट हो पाता है कि समय–समय पर बाहरी जातियों के आक्रमणों का प्रभाव इस क्षेत्र पर भी पड़ा होगा।

मत्स्य गणराज्य –

चीनी यात्री ह्वेनसांग ने लिखा है कि सातवीं शताब्दी में मत्स्य राज्य एक शक्तिशाली शासक द्वारा शासित था जिसका विस्तार दक्षिण–पश्चिम में 'परियात्रा' नाम से लगभग 500 मील क्षेत्र में था।[1]

ह्वेनसांग के वर्णन के आधार पर कहा जा सकता है कि उसके यात्रा काल में उत्तर भारत के मत्स्य प्रदेश के लोग योद्धा, युद्धप्रिय व शाही थे। यह स्थान राज्य 'सत्तदरा' व 'मथुरा' राज्यों के बीच का था जो प्राचीन काल में 'सूरसेन' नाम से जाना जाता था।[2]

कन्निंघम ने कहा है कि यह आज भी सत्य है कि जयपुर जो कि 'बैराठ' के दक्षिण में स्थित है, से दिल्ली व आगरा को मेंडे (कच्चे रास्ते) जाती थी। अतः 'बैराठ' राज्य में हाल के जयपुर राज्य का काफी हिस्सा मिला हुआ था।

कन्निंघम ने राज्य की सीमा उत्तर में झुन्झुनु से अजमेर तक 120 मील, दक्षिण में अजमेर से बनास और चम्बल के संगम स्थल तक 150 मील व संगम से कोटकासिम तक 150 मील तथा कुल क्षेत्र 490 मील माना है।[3]

कन्निंघम के इस कथन से 'मत्स्य प्रदेश' की भौगोलिक स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

कन्निंघम ने लिखा है कि अलवर की अरावली पहाड़ियों तथा जमुना के बीच का समस्त प्रदेश पश्चिम में 'मत्स्यों' तथा पूर्व में 'सूरसेनो' द्वारा अधिकृत था। मत्स्य राज्य में वर्तमान अलवर, जयपुर, भरतपुर के कुछ हिस्सों सहित 'बैराठ' सम्मिलित थे।[4]

---

[1] "बुद्धिस्ट रेकार्डस इन दी वेस्टर्न वर्ल्ड " – ह्वेनसांग, पृ. 178

[2] आर.एन.सोलेतोरे – न्यू इण्डियन एण्टीक्वेटीज, 1939–40, पृ. 395

[3] कन्निंघम, "ऐन्सेन्ट इण्डियन ज्योग्राफी", पृ. 391–93

[4] कन्निंघम, "ऐन्सेन्ट इण्डियन ज्योग्राफी", पृ. 391–93

अध्याय द्वितीय

- **डांग प्रदेश की जनजातीय लोकगायकी : कन्हैया (सामान्य परिचय)**

अध्याय द्वितीय

डांग प्रदेश की जनजातीय लोकगायकी : कन्हैया
(सामान्य परिचय)

❖ सांस्कृतिक पृष्ठभूमि –

किसी भी देश, प्रदेश की लोक संस्कृति को समझने के लिए सर्वप्रथम उस प्रान्त विशेष के आम लोगों को समझने की आवश्यकता होती है।

राजस्थान की संस्कृति का निवास लोकजीवन की भावानाओं में है। यही कारण है कि इसके विभिन्न स्वरूप देखने को मिलते हैं।

मानव समुदाय की रूचि को संस्कार प्रदान करने वाले तत्व संस्कृति है अर्थात् अर्जित संस्कारों का नाम ही संस्कृति है।

मैकाइवर ने संस्कृति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा है कि, "संस्कृति और आनन्द में पाए जाने वाले रहन–सहन और विचारों के तरीकों में हमारी प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति है।"

अतः स्पष्ट है कि संस्कृति के अन्तर्गत सामाजिक संस्कार, विश्वास, रीति–रिवाज, शिष्टाचार, धार्मिक आचरण आदि समाहित है।

संस्कृति की अपनी कुछ मूलभूत विशेषताएँ होती हैं – जैसे अनेकता में एकता, समन्वयशील, परिवर्तनशील, सामूहिक चेतना, दीर्घ एवं सशक्त परम्परा का सुदृढ़ आधार आदि। इन मूलभूत विशेषताओं के आधार पर ही उसकी पहचान और परख होती है।

सभ्यता और संस्कृति का रिश्ता अटूट है। दोनों ही एक–दूसरे के पूरक हैं और दोनों ही मिलकर मानव समुदाय या जाति को विशिष्ट रूप प्रदान करते हैं या यह कहें कि सभ्यता और संस्कृति मानव समुदाय या जाति विशेष को अपनी पहचान देते हैं।

सभ्यता बाह्य रूप है तो संस्कृति आंतरिक रूप। भारतीय दर्शन किस प्रकार शरीर और आत्मा के योग से जीवन को साकार रूप मानता है, उसी प्रकार किसी समुदाय या जाति विशेष की सभ्यता उसका बाह्य रूप अर्थात् शरीर है और संस्कृति आन्तरिक रूप या आत्मा है। इस सभ्यता रूपी शरीर और संस्कृति रूपी आत्मा के योग से समुदाय या जाति विशेष के जीवन की अभिव्यक्ति और उसकी पहचान होती है।

❖ जनजाति संस्कृति –

भरतीय संस्कृति के निर्माण में अनेक जातियों का योगदान रहा है। मीणा जनजाति एवं उसकी संस्कृति का इतिहास प्राचीन है। जिसे निम्न प्रकार से समझा जा सकता है।

(i) सामाजिक जीवन –

राजस्थान की मीणा जनजाति खेतिहर जाति रही है इसलिए धरती और जलवायु से उसका सीधा सम्बन्ध रहा है। इन दोनों तत्वों ने ही मीणा समुदाय को एक अलग पहचान दी है। खेतिहर होने के नाते धरती और प्रकृति से जुड़ाव ने उसे प्रकृति–पूजा दी और प्रकृति के रहस्यों ने उसे अंधविश्वास प्रदान किए। खेतिहर होने के नाते संयुक्त परिवार की अनिवार्यता ने परम्पराओं, रीति–रिवाजों के पालन की अनिवार्यता को जन्म दिया।

प्रकृति के अंचल में पलने वाली धरती–संतान अर्थात् मीणा जनजाति के सामाजिक स्वरूप को संक्षेप मे इस प्रकार समझा जा सकता है–

(क) रहन–सहन–

मीणा जनजाति में पितृ सत्तात्मक संयुक्त परिवार मिलते हैं। इसका प्रमुख कारण कृषि पर निर्भर होना है जो संयुक्त परिवार के द्वारा ही सम्भव है।

वर्तमान में शिक्षा के प्रचार–प्रसार होने के कारण सरकारी सेवाओं में इनका रूझान होने लगा है जिससे इनकी आर्थिक स्थिति पर भी अत्यधिक प्रभाव पड़ने लगा है।

मीणा जनजाति के रहन–सहन को समझने के लिए इनके घरों की बनावट को देखा जा सकता है। इनके दो प्रकार के घर होते हैं–

(i) कच्चा घर

(ii) पक्का घर

कच्चा घर मिट्टी की दीवारें चुनकर बनाये जाते हैं। ये तीन प्रकार से बनाए जाते हैं।

- ❖ **प्रथम** – दीवार (भींत) मिट्टी की और छत फूंस से ढकी हुई।
- ❖ **द्वितीय** – दीवार मिट्टी की और छत कवेलू (मिट्टी की पकाई हुई खपचियाँ) की होती है।
- ❖ **तृतीय** – दीवार मिट्टी की तथा छत पट्टियों से ढ़की हुई होती है।

इनके घर सामूहिक रूप से बड़ा चौक लिए (गुवाड़ी) चौकोर आकृति के होते हैं। परन्तु वर्तमान में सभ्य समाज के सम्पर्क के कारण इनके रहन–सहन में भी परिवर्तन देखने को मिल जाता है।

(ख) संस्कार –

मानव सभ्यता के आरम्भ से ही मनुष्य ने सामाजिक जीवन की आवश्यकता समझी और उसे व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने हेतु संस्कारों को भी आवश्यक समझा । भारतीय संस्कृति में सोलह संस्कारों का विधान है परन्तु इस जनजाति के द्वारा मुख्यतः जन्म, विवाह और अन्येष्टि को ही प्रमुखतः महत्व दिया गया है।

➢ जन्म संस्कार –

मीणा जनजाति में बच्चे (लड़का) के जन्म पर थाली और बच्ची (लड़की) के जन्म पर छाजड़ा (सूप) बजाया जाता है। बच्चे (लड़का) के जन्म पर 'नाड़' को जच्चा के देवर द्वारा गुड़ व सिक्के के साथ घर के दरवाजे के दाँई ओर जमीन में दबा दिया जाता है, इस क्रिया को 'नाड़ गाढ़ना' कहते हैं। इसके उपरान्त 'कुआ पूजन' किया जाता है जिसमें जच्चा और बच्चा दोनों के स्वस्थ जीवन हेतु देवी–देवीताओं के गीत गाए जाते हैं। इसे पुरूष वर्जित किया गया है।

➢ विवाह संस्कार –

समाज शास्त्रीय दृष्टि से विवाह जहाँ स्त्री–पुरूष के यौन सम्बन्धों की समाज द्वारा स्वीकृति होती है वहाँ हिन्दु संस्कृति में धार्मिक संस्कारों की दृष्टि से विशेष महत्व रखता है।

मीणा जनजाति में विवाह संस्कार को पूर्ण करने के लिए सगाई से लेकर गृह–प्रवेश व रात जगा आदि अनेक शिष्टाचार सम्पन्न होते हैं।

मीणाओं में विवाह के प्रमुख रूप से तीन रूप मिलते हैं–

- ❖ बाल विवाह
- ❖ बहु विवाह
- ❖ विधवा विवाह (नाता–प्रथा)

➢ अन्येष्टि संस्कार –

मीणा जाति के द्वारा वर्तमान में हिन्दुओं के समान मृतक के शरीर को जलाया जाता है। 'चकडोल' में मृतक के शरीर को गाँव के प्रमुख मार्गो से निकालते हुए 'शमशान' ले जाकर दाह संस्कार कर दिया जाता है। इसे स्त्री वर्जित रखा गया है।

मृत्यु के पश्चात् दाह संस्कार के बाद तीसरे दिन 'तीये की बैठक', नवें दिन 'नई ' ग्यारवें दिन 'मेल', बारहवें दिन 'नुक्ता', तेहरवें दिन 'ऊजली', पन्द्रवें दिन 'हताई' का आयोजन किया जाता है।

मीणा समाज में कुछ कार्य विशेष महत्व रखते हैं, जिन्हें सामाजिक आदर्श की संज्ञा दी जाती है।

अतिथि सत्कार मीणा जनजाति की अपनी विशेषता रही है, ये अतिथि को 'मेहमान' या 'पावणा' कहते हैं। ये अतिथि का सत्कार समर्पण भावना से करते हैं। यह इतिहास सम्मत बात है कि मीणा जनजाति के लोग वचन (कथन) पूरा करने में पक्के होते हैं। अपने द्वारा दिए गए वचन को प्राण से निभाने का यथासामर्थ्य प्रयास करते हैं।

(ग) खान–पान –

खान–पान का सम्बन्ध क्षेत्र की जलवायु एवं उपज आदि से अधिक रहता है। साथ ही उस वर्ग की सम्पन्नता भी इसका निर्धारण करती है।

मीणा जनजाति भूमिहर व श्रमजीवी रही है। अभावों से इसका निरन्तर संघर्ष रहा है। इनके जीवन से उपजी यह कहावत –

"मोटा खाना और मोटा पहनना"

इनके जीवन स्तर का सही रूप हमारे सामने प्रस्तुत कर देती है। स्पष्ट है कि प्रायः मोटा अनाज अर्थात् जौ, बाजरा, ज्वार तथा मक्का ही इनका प्रमुख खाद्यान्न रहा है।

राजस्थान के पूर्वांचल में गेहूँ, चना, जौ, ज्वार तथा मक्का की प्रधानता है। 'राबड़ी' इनका प्रिय भोजन है। यह बाजरा, मक्का तथा ज्वार को दलिया पीसकर छाछ (मट्ठा) या पानी में उबालकर (सिजोकर) बनाई जाती है और दूध व दही के साथ मिलाकर खाई जाती है। यह इनका दैनिक भोजन है। मीणा जनजाति सामान्यतः शाकाहारी होती है परन्तु वर्तमान में ये मांस–मदिरा का सेवन भी करने लगे हैं।

(घ) लोकोत्सव एवं मेले –

लोकोत्सव मानव समाज के उल्लास एवं उमंग के द्योतक हैं जो सामूहिक आनन्द का उद्देश्य लेकर चलते हैं। इन अवसरों पर मानव अपने जीवन की उलझनों को भुलाकर सामूहिक उल्लास में डूब कर कुछ समय के लिए अपने दुःख दर्दो को बिसराकर अपने आपको तरोताजा बना लेता है। अतः उत्सवों एवं मेलों को मानव मन के हर्ष, उल्लास तथा उमंग की अभिव्यक्ति कहना अनुचित नहीं होगा।

ये वे अवसर है जिनमें मनुष्य अपने अन्दर के हर्ष–उल्लास को सामूहिक रूप में व्यक्त करता है। हर जाति के जीवन में इनका विशेष महत्व होता है। जिस जाति में जितने अधिक उत्सव और मेले होते हैं, उस जाति की उतनी ही अधिक जीवन्तता का परिचय मिलता है।

मीणा जनजाति के जीवन का आधार कृषि और श्रम है। कृषि का उल्लास और श्रम की विश्रान्ति इनके उत्सवों एवं मेलों का मूल है। कृषि का सम्बन्ध प्रकृति और ऋतु से हैं। इनके लोकजीवन का गठबन्धन धर्म से हैं। अतः मीणा जनजाति के ये उत्सव एवं मेलों की पृष्ठभूमि में कृषि, श्रम, प्रकृति, ऋतु और धर्म मूल तत्व है।

- **उत्सव –**

मीणा जनजाति के उत्सवों को दो वर्गो में विभाजित किया जा सकता है –

– धर्म से सम्बन्धित

– कृषि तथा प्रकृति से सम्बन्धित

मीणा जनजाति धर्म भीरू रही है उसका त्यौहार किसी न किसी धार्मिक विश्वास पर आधारित है। यहाँ तक कि इनके प्रायः हर त्यौहार देवी–देवीताओं के मंदिर या देवरा पर जाकर ही सम्पन्न होते हैं। ऐसे ही किसी स्थल पर सामूहिक रूप से एकत्र होकर वाद्य यंत्रो के साथ गीत–गाकर यह जाति अपना उत्सव मनाती है। धर्म व त्यौहारों से सम्बन्धित प्रमुख उत्सव निम्नलिखित है – होलीकोत्सव, शिवरात्री, सेढ (शीतला पूजन), रामनवमी, मकर संक्राति, देवउठणी आदि।

जैसा कि कहा जा चुका है कि मीणा जनजाति का मूल जीवन आधार कृषि है और कृषि का मूल आधार प्रकृति तथा ऋतु है।

इसलिए कृषि, प्रकृति तथा ऋतु मीणा जनजाति के जीवन में अनेक उत्सवों का मूल हैं। इस वर्ग में प्रमुख उत्सव निम्नलिखित है –

हलोत्सव (आषाढ़ मास में)

देव सोउणी

हरियाली अमावस्या

कार्तिक पूर्णिमा

बसंत पंचमी

रंदूकड़ी (होली/धूलण्डी)

आखातीज आदि।

लोक सम्पर्क के विस्तार के साथ ही इनके द्वारा अन्य त्यौहारों को अपना लिया गया है, जैसे – रक्षाबन्धन, विजयदशमी, दीपावली आदि।

• मेले –

मेले लोकसंस्कृति के अभिन्न अंग है। मेले जनसमुदाय के उल्लास एवं उमंग पूर्ण मिलन के स्थल होते हैं। उत्सव की सम्पन्नता का क्षेत्र जहाँ उस गाँव विशेष तक सीमित रहता है, वहाँ मेलों में सम्मिलित होने वाला जनसमुदाय विभिन्न गाँवों से एकत्र होता है। मेलों की पृष्ठभूमि में भी जनसमुदाय का उल्लास एवं उमंग की भावना निहित रहती है। त्यौहार वह अपने गाँव वासियों के साथ मिलकर मनाता है। मेलों में वह उल्लास दूर–दराज के लोगों के उल्लास से संयुक्त होकर मिलन रूप धारण करता है। इस प्रकार मेले जहाँ एक ओर हर्ष–उल्लास की अभिव्यक्ति है तो दूसरी ओर मिलन के माध्यम भी है।

मीणा जनजाति का जीवन प्रकृति की भाँति उन्मुक्त और स्वछन्द रहा है। यही कारण है कि इनका हर्ष–उल्लास, सुख–दुख, भाव–विभाव उन्मुक्त और स्वछन्द रूप में मुखरित होता रहा है। मेलों में जहाँ मीणा जनजाति के बुजुर्ग आपसी मिलन में व्यस्त रहते हैं वहाँ युवक–युवतियाँ, नृत्य और गीतों द्वारा अपने हृदय की अगढ़ भावनाओं और उन्मुक्त उच्छवासों को निर्द्वन्द्व भाव से निश्छल हृदय से प्राकृत रूप में व्यक्त करते रहते हैं। ये अन्य जाति व धर्मों के मेलों में भी उसी भाव, हर्ष और उल्लास के साथ सम्मिलित होते हैं। इनके प्रमुख मेले निम्नलिखित हैं–

गणेश जी का मेला –

यह सवाई माधोपुर से लगभग 7 मील दूर स्थित रणथम्भौर में भादो सुदी चतुर्थी को लगता है।

चौथ का बरवाड़ा –

सवाई माधोपुर–जयपुर रेलवे मार्ग पर स्थित चौथ का बरवाड़ा में माघ की चतुर्थी को लगता है।

घुश्मेश्वर महादेव का मेला –

इस मेले का आयोजन 'शिवाड़' नामक स्थान पर शिव चतुर्दशी को किया जाता है।

❖ धार्मिक जीवन

लोक विश्वासों की मूल शक्ति धर्म ही है। किसी भी समाज में धर्म ही मुख्य व्यवस्थापक, संचालक, निर्देशक एवं निर्णायक रहा है। लोक जीवन लाभ–हानि, यश–अपयश, सफलता–असफलता, जन्म–मरण आदि सभी को धर्म के झरोखे से देखता है।

मीणा समुदाय जिसका जीवन प्राकृतिक एवं मानवीय आपदाओं से संघर्ष करते हुए बनता–मिटता रहा है, धर्म के प्रति अत्यन्त संवेदनीय है। यहाँ तक कि अंधविश्वास और रूढ़ियों का पर्याय हो गया है। धार्मिक जीवन के विविध पक्षों का संक्षिप्त परियच इस प्रकार है–

(क) देव उपसना –

मीणा जनजाति बहुदेव एवं प्रकृति उपासक रही है। इस जाति में उपासना की विभिन्न पद्धतियाँ मिलती है जैसे – ईश्वर उपसना, शिव उपासना, देवी उपासना आदि।

मीणा जनजाति में उपासना विभिन्न रूपों की देखने को मिलती है। शिव इनके प्रमुख इष्ट है। आज भी इनके द्वारा बनाए गए अनेक प्राचीन शिव मंदिर मिलते हैं।

इनमें प्रत्येक गौत्र की एक कुलदेवी या इष्टदेव अवश्य ही होते हैं जिनकी पूजा सामूहिक रूप से वर्ष में एक बार करते हैं। ये प्रमुख देवीयाँ निम्नलिखित है –

बीजासन, कैलादेवी, जीणमाता, चौथमाता, घटवासण माता, शीतला माता, बरवासन, कालिका, लखेसर, आदि।

मीणा जनजाति वैष्णव उपासक भी रही है। इनके द्वारा राम एवं कृष्ण की भी आराध्य के रूप में उपासना की जाती है।

सवाई माधोपुर के मीणा बहुल गाँवों में ठाकुर जी (राधा–कृष्ण) के मन्दिर होना, इनके वैष्णव उपासना के प्रतीक माने जा सकते हैं।

(ख) लोक देव उपासना –

मीणा जनजाति के कुछ अपने–अपने स्थानिय देव भी हैं जिनकी अपनी एक विशेष उपासना (पूजा) पद्धति होती है। इन स्थानीय देवों में निम्नलिखित मुख्य है–

भौमियाँ जी –

ये लोग भौमियां को अपना रक्षक मानते हैं। इनकी पूजा करने वाला 'पुजारा' कहलाता है और जिसके शरीर में भौमियां आता है, उसे 'गोठियां' या 'घोड़ला' कहा जाता है। 'गौठ' (गीत) गाकर इसे प्रसन्न किया जाता है।

भैरू जी –

ऐसी मान्यता है कि "संकट के समय भैरू जी ही आड़े आते हैं।" कुँआ खोदने व नया मकान बनाते समय भैरू जी को पूजा जाता है।

हीरामन –

हीरामन लोकदेवता को 'पशुधन' की समृद्धि के लिए तथा पशुओं में बीमारी नहीं फैले, इसके लिए हीरामन की मनौती मनाते हैं।

काड़स –

इनको जहर नष्ट करने वाला लोकदेवता माना जाता है। सर्प, बिच्छु, पागल कुत्ता, पागल सियार, आदि के काटने पर इनकी उपासना कर भभूति (राख) लगाने मात्र से जहर नष्ट हो जाता है, मीणा जनजाति के लोग ऐसा मानते हैं।

अन्य लोक देवताओं में उक्त के अतिरिक्त बालाजी, तेजाजी, खेतरपाल बाबा, देलवार बाबा, रामदेव जी, श्री जी (डिग्गी), गोवरधन आदि की भी उपासना ये करते हैं।

(ग) प्रकृति उपासना –

मीणा जनजाति का प्रकृति से विशेष सानिध्य रहा है। यही कारण है कि ये लोग प्रकृति के उपासक है। वे प्रकृति की उपासना प्रकृति के विविध उपादानों की पूजा करते हैं जिसे निम्न प्रकार से देखा जा सकता है।

वृक्ष पूजा –

वृक्ष प्रकृति की प्रमुख सम्पदा है। प्रकृति मीणा जनजाति की चिर सहचरी रही है। ये लोग आदिकाल से ही वृक्षों को देवतुल्य या देवरूप में देखकर उनकी पूजा करते रहे हैं। इनके द्वारा प्रमुख रूप से पीपल, चन्दन, बील–पत्र, पलाश, खैर, नीम, खेजड़ा, तुलसी, घास, केला आदि की मांगलिक कार्यो में पूजा अलग–अलग शैली से की जाती है।

ऋतु पूजा –

ये लोग प्रकृति के प्रत्येक परिवर्तन का हार्दिक रूप से स्वागत करते हैं। प्रत्येक ऋतु का स्वागत किसी न किसी पर्व के रूप में मनाते हैं। शरद् ऋतु में 'शरद् पूर्णिमा' कार्तिक स्नान की समाप्ति पर तो बसन्त व ग्रीष्म ऋतु का स्वागत 'बसन्त पंचमी' मनाकर करते हैं।

वर्षा ऋतु के आगमन को हर्ष–उल्लास के साथ हलोत्सव अर्थात् हल की पूजा करके खुशी के साथ मनाते हैं।

मीणा जनजाति के लोग महिने की प्रत्येक अमावस्या को खीर का भोग लगाकर पितृ–पूजा करते हैं। इस प्रकार प्रकृति को जीवन में उपयोगी मानकर विविध प्रकार से पूजा करते हैं।

पाषाण पूजा –

मीणा जनजाति में पत्थर को देव समान मानकर पूजा की जाती है। 'पथवारी पूजा' इसी प्रकार की पूजा है। इन लोगों का ऐसा मानना है कि सिन्दूर लगा पत्थर ही देवता होता है। उसकी पूजा करना या सम्मान करना प्रत्येक व्यक्ति का अपना धर्म होता है। भौमियां जी, भैरू जी, बालाजी, हीरामन आदि लोकदेवताओं को पाषाण के रूप में ही पूजा जाता है।

पशु पूजा –

मीणा जनजाति में पशुओं की पूजा की जाती है। इनके द्वारा दशहरे पर 'घोड़ा–घोड़ी', दीपावली पर 'गाय' तथा गोवर्धन की पूजा करने को पहले स्नान कराते हैं, मेहन्दी लगाते हैं, सींग रंगते हैं, कोड़ियों के गण्ड़े तथा मोरपंखों के गण्ड़े रंगकर बाँधते हैं।

पितृ पूजा –

मीणा जाति में माना जाता है कि अपने पूर्वजों की पूजा करने से स्वर्ग में उन्हें शान्ति मिलती है। प्रमुखतः इनके द्वारा प्रत्येक महिने की अमावस्या को दूध में चावल की खीर बनाकर अपने अहूतों (वे पूर्वज जिनकी कोई सन्तान पैदा नहीं हुई) को भोग लगाते हैं, इस दिन बैलों को अजोता (हल के साथ नहीं जोड़ना) ही रखते हैं।

इन लोगों के द्वारा छोटी दीपावली (रूप चौदस) को तथा देवउठनी के पश्चात् आने वाली चतुदर्शी को अपने पितृो को सामूहिक रूप से जल–तर्पण किया जाता है जिसे "पानी देना" कहते हैं।

इसके पीछे पूर्वजों का मोक्ष प्राप्त करना माना जाता है। मृत पितामहों की आत्मशांति के लिए श्राद्ध करना, ब्राहम्णों को दान–दक्षिणा देना एवं कनागत (श्राद्ध पक्ष) में पूर्वजों को जल–तर्पण करने का कार्य ये जनजाति सभ्य समाज के सम्पर्क में आने के कारण वर्तमान में करने लगी है। परन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी इनकी पुरातन शैली ही चली आ रही है।

मीणा जनजाति के जीवन में धर्म का प्रभाव पग–पग पर परिलक्षित होता है बिना धर्म के उनका कोई कृत्य पूर्ण नहीं होता। धर्म उसकी रग–रग में समाया हुआ है। धार्मिक भावना एवं धार्मिक मूल्यों को निम्न बिन्दुओं द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।

- मीणा जनजाति के लोग पुनर्जन्म की धारणा को मानते हैं कि मरने के बाद मृतक जीव (व्यक्ति) किसी न किसी यौनि में पुनः जन्म लेता है।

  पुनर्जन्म इस जन्म के सद्–असद् कर्मो के आधार पर होता है। सद्कर्म करने वाले को पुनः मनुष्य यौनि में ही जन्म मिलता है, इस संशय को मिटाने के लिए कि मृतक ने

किस यौनि में प्रवेश पाया है, इसके लिए जहाँ मृतक प्राणी ने प्राण त्यागे हैं, उस स्थान पर दीपक जलाते हैं और थाली में राख रख देते हैं। इसके मूल में यह धारणा है कि मृतक जिस भी यौनि में जन्म लेगा, उस प्राणी के पदचिन्ह राख पर अंकित हो जाते हैं।

- इस जनजाति में तीर्थो के प्रति अटूट श्रद्धा पाई जाती है। तीर्थस्थानों की यात्रा करना, स्नान करना, दर्शन व दान करना मुक्ति मार्ग को प्राप्त करना मानते हैं।
  जीवन में एक बार तीर्थ करना आवश्यक समझा जाता है इनके द्वारा बद्रीनाथ केदारनाथ, हरिद्वार, ओंकारेश्वर, रामेश्वरम्, जगदीशपुरी, द्वारिकापुरी, मथुरा–वृन्दावन, अयोध्या आदि हिन्दु तीर्थस्थलों को प्रमुख रूप से अपनाया गया है।
- मीणा जनजाति में अंधविश्वास एवं भ्रान्त मान्यताओं का भी बाहुल्य रहा है। राजस्थान की सबसे अधिक शिक्षित जनजाति होने के बावजूद वर्तमान में अंधविश्वास एवं जादू–टोने से ये मुक्त नहीं है। इनके जीवन में प्रचलित अंधविश्वास एवं मान्यताओं में ये उल्लेखनिय रहे हैं–
  - मृत्यु के समय 'गाय और अनाज' का दान करना अच्छा मानते हैं।
  - मूठ (मारण मंत्र) दिलवाने से बच्चे (मृत बच्चे की जीवात्मा) की मृत्यु हो जाती है। मूठ को मंत्र–तंत्र से दूर किया जा सकता है।
  - भूत–चुड़ैल से बचने के लिए उतारा करवाते हैं, यह कार्य स्याणे–भोपे के द्वारा ही करवाये जाते हैं।
  - नजर लगने से बच्चे अस्वस्थ या मर तक जाते हैं परन्तु झाड़–फूँक करने, राई–लोण (नमक) उतारने व तंत्र–मंत्र करने से नजर से उन्हें बचाया जा सकता है।
  - रोग विशेष की देवी–देवीताओं का प्रकोप समझना जैसा–चेचक, पीलीया, तपेदिक, टायफाइड़ आदि।
  - यात्रा करते समय तेली (जाति) का मिलना अशुभ समझते हैं तथा यात्रा के समय सामने से पणिहारी पानी के खाली बर्तन लेकर आती हुई मिलना भी अमंगलकारी मानते हैं।
  - कुत्ते का रोना, गीदड़ का दिन में बोलना, घू–घू (पक्षी) का बोलना, केड़ा (कबूतर) का घर में बोलना, छिपकली का दीवार से गिरना, पागल सियार के बोलने को अशुभ मानते हैं।
  - हथेली में खुजली चलने को पैसे (धन) प्राप्ति का प्रतीक मानते हैं और पैर के तलुओं में खुजली चलना यात्रा करने का सूचक मानते हैं।

कृषि मीणा समुदाय का प्रमुख व्यवसाय रहा है। इनका यह व्यवसाय पूर्णतया प्रकृति एवं मानसून पर निर्भर है। मानसून अनिश्चयता की स्थिति के दीर्घकालीन अनुभव के कारण खेती से सम्बन्धित अनेक मत या विश्वास बने और बिगड़े हैं। उनमें से कुछ मत पीढ़ी–दर–पीढ़ी चले आ रहे हैं जिनका समाज में आज भी महत्व कम नहीं है।

- बुधवार बीज बोना आरम्भ करना और शुक्रवार को फसल काटने को शुभ मानते हैं – "बुध बावणी, शुक्र लावणी" ये कहावत इसे परिलक्षित करती है।
- पहली बार खेती के बीज बोने जाते समय सर्प का मिलना अशुभ मानते हैं।
- आषाढ़ में फकीर (तेली) का मिलना बुरा माना जाता है।

❖ आर्थिक जीवन –

रोटी, कपड़ा मकान मानव जीवन की प्रथम मूल आवश्यकताऐं है और इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जो कार्य किए जाते हैं वे ही आर्थिक जीवन को प्रभावित करता है। मीणा जनजाति के जीविकोपार्जन के प्रमुख साधन कृषि, पशु–व्यापार आदि है।

ये लोग प्रमुखतः खेती का कार्य करते हैं जिसमें परिवार के सभी छोटे–बड़े, स्त्री–पुरूष कंधे से कंधा मिलाकर परिश्रम करते हैं। कृषि पर आधारित रहने वाले पशु–पालन का कार्य भी करते हैं क्योकि पशुपालन कृषि के परस्पर पूरक के रूप में उपयोगी होता है। खेती के लिए खाद पशुओं से और पशुओं के लिए चारा खेती से ही प्राप्त होता है।

प्रमुख रूप से मीणा गाय, भैंस, बकरी, ऊँट, बैल और घोड़े जैसे पशुओं का ही पालन करते हैं क्योंकि ये इनको व्यापार हेतु भी रखते हैं।

घरेलू आवश्यकता से अधिक उत्पन्न अनाज को बाजार में बेच देते हैं जिससे इन्हें मुद्रा प्राप्त हो जाती है।

वर्तमान में मीणा जनजाति के लोगों में शिक्षा का प्रचार–प्रसार बढ़ गया है जिससे सरकारी क्षेत्रों में भी ये कार्य करने लगे हैं और इसके कारण इनकी आर्थिक स्थिति में सुधार देखा जाने लगा है।

❖ राजनीतिक जीवन –

आदिम जनजाति 'मीणा' समाज की प्राचीन पंचायत व्यवस्था उसके राजनैतिक जीवन की झाँकी प्रस्तुत करती है। प्राचीन भारतीय ग्रामीण व्यवस्था की परम्परा के अनुसार आज भी ये पंचायत प्रथा को अपनाए हुए हैं। सामाजिक झगड़े आज भी पंचायतों के द्वारा ही निपटाए जाते हैं। पंचायतों में केवल पुरूष ही भाग लेते हैं। विशेष रूप से कुटुम्ब या कुलों के मुखिया इन पंचायतों में भाग लेते हैं।

इन पंचायतों को निम्न प्रकार वर्गीकृत किया गया है–

- ग्राम पंचायत
- गौत्र पंचायत
- क्षेत्रीय पंचायत
- चौरासी की पंचायत (गाँवों की पंचायत)
- प्रान्तीय पंचायत (प्रान्त की सम्पूर्ण जातीय मुखिया भाग लेते हैं)

'ग्राम पंचायत' में जो मामले हल नहीं हो पाते उन्हें 'गौत्र पंचायत' में ले जाया जाता है यदि वहाँ भी निर्णय नहीं हो पाये तो 'क्षेत्रीय पंचायत' में उठाया जाता है। प्रान्तीय पंचायत या सम्मेलन का कार्य झगड़ों को निपटाना न होकर जाति सुधार एवं उत्थान के कार्य करता है। इस प्रणाली में सबसे लघु ईकाई 'ग्राम पंचायत' और उच्च स्तरीय ईकाई 'चौरासी की पंचायत' होती है।

पंचायत की बैठक होने की निश्चित तिथि नहीं होती किन्तु कारणवश ये कभी–भी बुलायी जा सकती है। पंचायत सभा का स्थान निश्चित होता है जिसे 'हथाई' कहा जाता है। यदि कभी जब यह स्थान उपलब्ध नहीं होता तो गाँव के प्रमुख मंदिर अथवा पीपल के पेड़ के नीचे या मुख्य स्थान पर ये सभाएँ सम्पन्न होती है।

इन पंचायतों में मुख्यतः जो कार्य या क्षेत्र आते हैं वे निम्नलिखित है –

- पैतृक सम्पत्ति सम्बन्धी विवाद।
- स्त्रियों को बहला–फुसलाकर या धमकाकर किए गए अपहरण के मामले।
- पति–पत्नी के परस्पर त्यागने के मामले।
- जातीय नियमों के उल्लंघनों के मामले।
- सामाजिक बहिष्कार के मामले।
- धार्मिक कार्यो से सम्बन्धित मामले।

इन पंचायतों द्वारा किए गए निर्णय का सब लोग पालन करते हैं। पालन नहीं करने वाले व्यक्ति को दण्डित करने की व्यवस्था होती है। ऐसे अपराधियों को जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता हैं तथा उनका हुक्का–पानी भी बन्द कर दिया जाता है।

पंचायत द्वारा की गई कठोर दण्ड–व्यवस्था के कारण उसके निर्णयों की अवहेलना बहुत कम होती है। इनकी दण्ड व्यवस्था निम्न प्रकार की होती है –

- जाति भोज की व्यवस्था करने का पूर्ण खर्चा करना।
- कबूतरों को अनाज डलवाना।
- पंचों की जूतियाँ सिर पर रखना।

- गंगा जी या पुष्कर स्नान को भेजना।
- जाति से बहिष्कृत करना।
- एक पैसा, सवा रूपया या अधिकतम राशि का जुर्माना करना।

वर्तमान में शिक्षित होने के कारण इन लोगों में राजनीतिक जागरूकता पहले की अपेक्षा अधिक होने लगी है।

संवैधानिक व्यवस्था के फलस्वरूप संसद में 3 तथा विधानसभा में 25 सदस्य है। जिला परिषद एवं पंचायत समितियों में भी मीणा जनजाति को प्रतिनिधित्व मिलने लगा है।

लोकगीतों का सामान्य परिचय

प्रारम्भ में जब मनुष्य इस धरती पर अवतरित हुआ तो वह रिक्त पृष्ठ की भाँति ही रहा होगा परन्तु फिर जब जीवन की गति बढ़ती गई मनुष्य ने अपनी जगह निर्धारित करने के लिए परिवार जैसी संस्था विकसित की तब यह संस्था और उसकी इच्छाएँ अपना आकार बढ़ाती रही। इन इच्छाओं की संतुष्टि या पूर्त्ति हेतु उसने तरह–तरह के जतन कर उन्हें अपने जीवन और संघर्ष के साथ सीधा जोड़ा। वह घर बनाने, उदर–भरण के साधन तथा इच्छा और मन–आत्मा को तृप्त करने के लिए अलग–अलग कोशिशों से उनकी कई धुनें, बोली, भाषा और गीतों को गुनगुनाने में सक्रिय रहा।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार 'लोक' शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई समूची जनता है, जिनके व्यवहारिक ज्ञान का आधार 'पोथियाँ' नहीं है।[5]

डॉ. विद्या चौहान के अनुसार–सम्पूर्ण विश्व के समूहों मानवीय क्रिया–कलापों तथा विचार परम्पराओं के रूप में 'लोक' में उपस्थित है।[6]

लोक का अभिव्यक्त रूप वह सामान्य जन–समूह है जो अपनी नैसर्गिक प्रकृति के सौन्दर्य की दिव्य ज्योति से अपनी संस्कृति का निर्माण करता है। अतः 'लोक' वह जन समुदाय है, जो कृत्रिम पर्यावरण से मुक्त नैसर्गिक जीवनयापन करता हुआ अपनी मान्यताओं, परम्पराओं तथा क्रिया के माध्यम से निर्मित संस्कृति विशेष में जीता है।

लोक जीवन प्रवाह प्रवृत्ति मूलक है। उसमें विविध विश्वास भरे हुए है। ये विश्वास लोकजीवन के मूलाधार या उनकी शक्ति है। इनकी जड़े इतनी गहरी है कि विज्ञान की तीव्र प्रगति भी इन विश्वासों को नहीं तोड़ पा रही है। इस लोकजीवन में प्रस्फुटित या इस जीवन का निर्वाह करने वाला नैसर्गिक साहित्य ही लोक साहित्य है।

लोक साहित्य के अन्तर्गत वह समस्त शैली या भाषागत अभिव्यक्ति आती है, जिसमें मानस के अवशेष उपलब्ध हों, परम्परागत मौखिक क्रम से उपलब्ध बोली या भाषागत अभिव्यक्ति हो, जिसे किसी की कृति न कहा जा सके, जिसे श्रुति ही माना जाता है और जो मानस की प्रवृत्ति में समाई हुई हो।

डॉ. सत्येन्द्र लोकगीत की मौखिक परम्परा का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि वह समस्त साहित्य जो मौखिक रहा है तथा जिसके निर्माण में अभ्यास अथवा अध्ययन ने कोई

---

[5] डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी : जनपद – पृ. 65

[6] डॉ. विद्या चौहान : "लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि" – पृ. 40

हिस्सा नहीं लिया वही हृदय और मानस की सहज अकृत्रिम अभिव्यक्ति लोक साहित्य कही जायेगी।[7]

राजस्थान में आदिम जनजातियों के निवास के प्रमाणों के कारण लोक–साहित्य की दीर्घ परम्परा मिलती है। प्राकृतिक विषमताओं एवं अभावों से जूझते हुए भी यहाँ का जन मन लोक संस्कृति की उन्मेषपूर्ण गरिमा से युक्त रहा है। यही कारण है कि गाँव–गाँव और घर–घर में राजस्थानी लोक कला और लोक–साहित्य की स्पन्दनपूर्ण थाती के दर्शन मिलते हैं।

लोक साहित्य अपनी मौखिक परम्परा के सहारे निरन्तर अग्रसर है। इसे बनाये रखने में जनजातियों का विशिष्ट योगदान रहा है। क्योंकि इनके द्वारा कंठानुगत परम्परा में असंख्य सामाजिक तथ्यों को सुरक्षित रखने में सहयोग किया जा रहा है।

मानव जीवन में मनोरंजन का विशेष महत्व है जिसके माध्यम से वह उल्लास, प्रफुल्लता एवं जीवन की नवगति प्राप्त करता है। शिष्ट वर्ग में मनोरंजन के अनेक साधन है जबकि लोकजीवन में इनका अभाव रहता है लेकिन लोकरूचि मनोरंजन के लिए अपने साधन खोज लेती है।

लोकगीत, लोकनाट्य, लोकगाथा, लोककथा, आदि लोकरंजन की प्रमुख विधाऐं है। जिनमें लोकमानस की भावानुभुतियों की अभिव्यंजना होती है। लोकमानस सामूहिक स्थिति के कारण सामाजिकता के निकट होता है। उसकी यह सामाजिकता विभिन्न नीतियों से निर्मित होती हैं और प्रत्येक जाति का अपना लोकमानस होता है।

मीणा जनजाति के लोकसाहित्य में भी उसके सभी जातीय तत्व विद्यमान है। हर्षोल्लास, हास–परिहास, सुख–दुख, रीति–रिवाज, विश्वास–अविश्वास परिस्थितियाँ आदि सभी की अभिव्यक्ति इनमें मिलती हैं यह अभिव्यक्ति किसी एक रूप में नहीं अनेक रूपों या विधाओं में होती है जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है –

- लोकगीत
- लोकगाथा
- लोककथा
- लोकनाट्य
- अन्य – लोकोक्ति, मुहावरे, पहेलियाँ

लोकगीत आदिमानव के आनन्दावेशमय क्षणों के उद्‌गार और प्रफुल्लित एवं आत्मरत अनुभूतियों के अजस्र स्त्रोत हैं। आदिमानव हृदय की भावनाओं का यह स्त्रोत अपनी संजीवनी शक्ति के बल पर अब तक जीवित है और एक कंठ से दूसरे कंठ में, एक हृदय से दूसरे हृदय

[7] डॉ. सत्येन्द्र – "लोकसाहित्य विज्ञान", पृ. 3,4 ; डॉ. सत्येन्द्र – "ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन", पृ. 7

में प्रतिध्वनित होता चला आ रहा है।[8]

संवेदनशील एवं भावुक जन हृदय जब बोझिल हो उठता है तो वह गाकर अपने मन का बोझ हल्का करता है। इस गान में जनजीवन के हर्ष–विषाद, आशा–निराशा और सुख–दुख सभी की अभिव्यक्ति होती है। इसमें मानव की कल्पनाशक्ति भी अपना काम करती है तो रसवृत्ति और भावना एवं नृत्य के हिलोरे भी। परन्तु पर ये सब स्वाद है। लोकगीत हृदय के खेत में उगते हैं। सुख के गीत उमंग के जोर से जन्म लेते हैं और दुःख के गीत तो खोलते लहू में पनपते हैं और आँसुओं के साक्षी बनते हैं।[9]

आत्मा का आनन्द आंगिक चेष्टाओं से व्यक्त होकर नृत्य बन जाता है और वाचिक होकर गीत।[10]

लोकगीतों का सृजन कुछ व्यक्तियों द्वारा होता है परन्तु उनकी अनुभूति व्यापक होती है। वह जन सामान्य के हृदय से मेल खाकर सार्वजनिक बन जाती है। यही कारण है कि लोकगीतों में वैयक्तिकता का नितान्त अभाव रहता है।

मौखिक परम्परा पर आधारित होने के फलस्वरूप लोकगीतों का बाह्य आवरण परिवर्तित होता रहता है इतना होने पर भी उसकी आत्मा में आमूल–चूल परिवर्तन नहीं होता। उसमें पुरातन और नवीन का मिश्रित रूप परिलक्षित होता है। स्पष्ट है वह न तो पुराना होता है और न नया। वह तो वृक्ष के समान है जिसमें निरन्तर नयी शाखाएँ, नये पत्ते, नये फूल लगते रहते हैं।

लोकगीत सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं व्यापक क्षेत्र वाली विधा है। जीवन का कोई ऐसा पहलू नहीं, ऐसा दृष्टिकोण नहीं, ऐसा स्पन्दन नहीं जो लोकगीतों की सीमा स्पर्श न करता हो।

लोकगीत शब्द में गायन भाव छिपा है। गेय होने के नाते संगीत भी इससे स्वतः आ जुड़ता है किन्तु यह किसी निश्चित एवं नियंत्रित संगीतात्मक प्रक्रिया का परिणाम नहीं है। जीवन की सहज क्रियाओं में लीन जनसमुदाय के निश्छल सरल, स्वाभाविक भाव गीतों के बोल बनकर उनके कंठ–स्वर में तैरने लगते हैं।[11]

उद्‌गम एवं सृजन सम्बन्धी मान्यताओं के आधार पर अध्येताओं एवं विवेचकों ने लोकगीतों को विविध प्रकार से परिभाषित किया है –

---

[8] वीणा – ग्राम संस्कृति अंक 1971 (फरवरी–मार्च) – मोहन उपाध्याय

[9] देवेन्द्र सत्यार्थी – "धरती गाती है", पृ. 106

[10] डॉ. चिन्तामणि उपाध्याय "मालवी लोकगीत : एक विवेचनात्मक अध्ययन" – पृ. 4

[11] डॉ. विद्या चौहान – "लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि", पृ. 73.–74

" लोकगीत आदिम अविरल संगीत होता है।"[12]

"लोकगीत न पुरातन होता है, न अर्वाचीन होता है। वह उस वृक्ष के समान होता है, जिसकी जड़े दूर तक जमीन में धँसी हुई हैं परन्तु जिसमें निरन्तर नई–नई डालियाँ, पल्लव और फूल फूलते रहते हैं।"[13]

"लोकगीत किसी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र है।"[14]

"ग्राम गीत प्रकृति के उद्‌गार हैं इनमें अलंकार नहीं, केवल रस है। छन्द नहीं केवल लय है। लालित्य नहीं, केवल माधुर्य हैं।"[15]

लोकगीतों की उपर्युक्त परिभाषाओं में आत्मानुभूति एवं उसकी अभिव्यक्ति के तत्व की ही प्रधानता है। स्वच्छन्द एवं उन्मुक्त वातावरण को लोकगीत–सृजन की आवश्यक स्थिति माना गया है। लोकभावना आडम्बरों और बन्धनों की ओर ध्यान नहीं देती और ना ही भाषा एवं छन्दों के शास्त्रीय नियम–बन्धनों की चिन्ता करती है। अतः कहा जा सकता है कि सामान्य लोकजीवन के धरातल पर अचिन्त्य रूप से फूट पड़ने वाले लयात्मक हृदयोद्‌गारों की अभिव्यक्ति ही 'लोकगीत' कहलाती है।

लोकगीतों का महत्व –

लोकगीत अपने आप में संस्कृति का परिधान धारण कर समाज की एक अमूल्य निधि बने हुए है। अपेक्षित जातियों के प्राचीन जीवनवृन्त का दर्शन कराने के लिए इतिहास के पृष्ठ मूक हैं। शिलालेख और ताम्रपत्र भी उपलब्ध नहीं है, वहाँ उस अंधकार में उसके लोकगीत आदि ही दिशानिर्देश देते हैं क्योंकि लोकगीतों की परम्परा उतनी ही प्राचीन है जितनी मानव संस्कृति।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से –

लोकगीतों में सामाजिक जीवन ही मुखर होता है। समाज में प्रचलित रूढ़ियाँ, परम्पराएँ, रीति–रिवाज, सामाजिक सांस्कृतिक मूल्य एवं विश्वास ही लोकगीतों में अभिव्यक्ति पाते हैं।

किसी भी जाति का वास्तविक समाजशास्त्रीय अध्ययन उसके लोकगीतों के माध्यम से सहज सम्भव है। मीणा जनजाति के लोकगीतों में बाल–विवाह, बहु–विवाह, मृत्युभोज आदि

---

[12] एनसाइक्लोपिड़िया ऑफ ब्रिटानिका वाल्यूम – 9 "पेरी का कथन" पृ. 442

[13] एनसाइक्लोपिड़िया ऑफ ब्रिटानिका वाल्यूम – 9 "विलियम का कथन" पृ. 443

[14] देवेन्द्र सत्यार्थी – "आजकल" मासिक पत्रिका 1951, पृ. 17

[15] रामनरेश त्रिपाठी – "कविता कौमुद्री" ग्राम गीतों का परिचय, पृ. 1–2 (भाग–5)

कुरीतियों का संश्लिष्ट चित्र एवं उनके कारणों तथा परिणामों के मार्मिक संकेत प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार तात्कालिक धार्मिक मान्यताओं, पारिवारिक सम्बन्धों एवं स्थितियों आदि का सजीव वर्णन मिलता है, उसके विश्वास–अविश्वास, अंधविश्वास, भाव–अभाव, जन्म से मरण तक के सभी संस्कार यहाँ तक कि अन्तः स्थल में छिपी हुई मनौतियाँ, लोकगीतों के रूपों में फूट पड़ती है।

अतः लोकगीतों के माध्यम से इनकी सम्पूर्ण सामाजिक एवं पारिवारिक संरचना का प्रमाणिक एवं वास्तविक स्वरूप का अध्ययन किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त लोकगीतों की सबसे बड़ी उपयोगिता यह भी है कि इनके माध्यम से एक–दूसरे से जुड़कर लोकमानस का निर्माण होता है। ये गीत व्यक्ति के सुख–दुख को समष्टि का सुख–दुख बनाकर सामूहिक चेतना का निर्माण एवं विकास करते हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से –

लोकगीतों में देशकाल और वातावरण की किसी न किसी रूप में अभिव्यक्ति होती है अतः इन लोकगीतों के किसी भी देश, जाति या समाज का इतिहास भी कहा जा सकता है। ये लोकगीत अपने देश–काल–समाज के इतिहास को अपने में सुरक्षित रखते हैं या यों कहें कि प्रत्येक समाज अपने इतिहास को इन लोकगीतों में या उनके माध्यम से सुरक्षित रखता है, और सर्वकालिक बनाता है। पृष्ठों में लिखित इतिहास तो मूक होता है परन्तु स्वरलिपि में रचित इतिहास न केवल मुखर होता है अपितु दीर्घजीवी भी होता है। हालांकि दीर्घजीवी एवं कंठजीवी होने के कारण तिथियाँ, कालबोध अवश्य ही इनसे सुरक्षित रखना सम्भव नहीं है।

मीणा जनजाति के पास लिखित इतिहास का नितान्त अभाव रहा है ऐसी स्थिति में उसके लोकगीतों का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। अनेक लोकगीतों में बिखरी हुई ऐतिहासिक कड़ियों को जोड़कर ऐतिहासिक तथ्यों का संकलन किया जा सकता है। जिनके माध्यम से इस जाति के इतिहास को भी प्रकाश में लाया जा सकता है और वर्तमान में इतिहास को जीवित रखा जा सकता है ताकि वे उससे प्रेरणा और शक्ति लेते रहे। कहा जा सकता है कि ये समाज इन लोकगीतों के माध्यम से अपनी ऊर्जा वर्तमान को प्रेषित करता रहता है।

सांस्कृतिक दृष्टि से –

लोकगीतों की वाटिका में सबसे मनोहरी पृष्ठ संस्कृति का ही खिलता है। लोकगीतों की हर पंक्ति में संस्कृति की सुगंध भरी रहती है। संस्कृति का कोई भी पक्ष चाहे रीति–रिवाज, परम्परा, रूढ़ि या पर्व–त्यौहार हों अथवा मूल्य, आदर्श, विश्वास या अंधविश्वास हो या फिर जन्म से मृत्यु तक का कोई भी संस्कार हो लोकगीतों से अछूते नहीं रहते। निश्चित ही लोकगीतों को संस्कृति का दर्पण कहा जा सकता है।

अतः मीणा जनजाति की संस्कृति का अध्ययन या विवेचन भी उसके लोकगीतों के सहयोग के अभाव में असम्भव है। सांस्कृतिक दृष्टि से लोकगीतों की महत्ता इसलिए और भी अधिक है कि ये लोकगीत उस समाज की संस्कृति को अमरत्व प्रदान करते हैं। इन लोकगीतों के माध्यम से ही सांस्कृतिक धारा पीढ़ी दर पीढ़ी अनवरत बढ़ती रहती है।

साहित्यिक दृष्टि से –

जनमानस के भावरत्न अगढ़ रूप में ही सही पर जितने लोक साहित्य में उतने शिष्ट या विशिष्ट साहित्य में नहीं। शिष्ट साहित्य इन लोकगीतों से प्रचुर भाव–सम्पदा, रस–सम्पदा, अलंकार–सम्पदा एवं स्वर–सम्पदा ग्रहण कर सकता है।

लोकगीतों में प्राप्त भावों की विविध लहरी, स्वाभाविक अलंकार, छन्द, कहावतें, मुहावरे एवं काव्य–रूढ़ियाँ साहित्य की अमूल्य निधि हो सकती है।

लोकगीत जनमानस के नैसर्गिक भावोद्‌गार होते हैं। इनकी परम्परा भी प्राचीन होती है अतः लोकगीतों की भाषा एवं शब्दों का रूप समयानुसार बदलता रहता है। इस दृष्टि से लोकगीतों के माध्यम से समय–समय पर हुए भाषागत परिवर्तनों का एवं उसकी भाषा–सम्पदा का अध्ययन सम्भव है। इस प्रकार लोकगीतों का भाषा की समृद्धि एवं उसके विकास में सहयोग असंदिग्ध है।

भौगोलिक दृष्टि से –

लोकगीतों में स्थानीय भौगोलिक स्थिति भी अनेक सन्दर्भो सहित कथ्य का विषय बनती है। ऋतुओं तथा कृषि से सम्बन्धित गीतों से हम स्थानीय पर्यावरण का बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इन लोकगीतों में नदी, पर्वत, पशु–पक्षी, पेड़–पौधों आदि का चित्रण होता है। अतः इनके माध्यम से उसके भौगोलिक परिवेश का बहुत कुछ परिचय प्राप्त किया जा सकता है और इस ज्ञान एवं परिचय के माध्यम से हम उसमें पलने वाले मानव समाज की आंगिक एवं मानसिक संरचना का अध्ययन विवेचन कर सकते हैं।

इस प्रकार लोकगीतों का अपना महत्व है, ये लोकसंस्कृति एवं लोकजीवन के अध्ययन के मुख्य माध्यम हैं साथ ही उनकी अंतरंग झाँकी भी है।

मीणा जनजाति इस देश की विशेष कर राजस्थान की आदिम जातियों में से एक प्रमुख जनजाति है जिसकी अपनी एक विशिष्ट संस्कृति है किन्तु अध्ययन की दृष्टि से यह आज तक अछूती ही रही है। यहाँ तक कि इसका इतिहास भी अंधकार की परतों में खो चुका है। ऐसी स्थिति में इसके लोक साहित्य तथा लोकगीतों का विशेष महत्व हो जाता है क्योंकि आज इनके माध्यम से ही इस जनसमुदाय का परिचय प्राप्त किया जा सकता है।

जनजातीय (मीणा) लोकगीतों का परिचय

लोकगीतों का संसार लोक–हृदय हैं। लोक हृदय ही लोकगीतों के रूप में फूटता है। लोकहृदय जटिलता, दुरूहता एवं गोपनीयता से मुक्त सहज, सरल निष्कपट होता है अतः उससे अद्‌भूत लोकगीतों में राग–विराग के सीधे–सच्चे भावों का सीधा निश्च्छल प्रकटीकरण स्वभाविक है। तब यह कहा जा सकता है कि विभिन्न सन्दर्भो से लोक–हृदय की सीधी–सच्ची, निश्च्छल रागात्मक अभिव्यक्ति ही गेय रूप में "लोकगीत" कहलाती है।

रानी लक्ष्मी कुमारी चूंडावत ने लोकगीत के स्वरूप को और भी स्पष्ट करते हुए कहा है कि – "लोकगीत प्राणवान है, मधुर है, नैसर्गिक है और इसमें हृदय की गति को बिलोड़ित करने की शक्ति है। ये गीत असंख्य नारियों के हृदय की झनकार है, कामना की शब्दमूर्त्ति है और भावनाओं के रेखाचित्र है।"

इन गीतों के द्वारा ग्रह देवियाँ मुस्कुराई है, काल्पनिक आनन्द से आँख–मिचौनियाँ खेली है और प्रेमाभिनय के संकेत किए है। गा–गाकर घर–घर में जीवन ज्योति जगा दी है।[16]

लोकगीत उस जाति या समाज विशेष का जीवन–दर्शन या उसके जीवन की अन्तरंग झाँकी है। मीणा लोकगीतों में भी हमें मीणा जनजाति के सम्पूर्ण संस्कृति के दर्शन होते हैं, उनके अन्तर्मन से साक्षात्कार होता है, उनके भावों–अभावों, राग–विरागों, रूचि–अरूचियों का ज्ञान होता है।

अतीत का गौरव, वर्तमान का यथार्थ और भविष्य की नैसर्गिक कल्पना के सौरभ से युक्त लोकगीतों में हमें मिट्टी की सुगंध, प्रकृति की नैसर्गिकता, मन की निश्च्छलता, जीवन की अगढ़ता और भावों की उन्मुक्त सुकुमारता देखने को मिलती है।

[16] लक्ष्मी कुमारी चूंडावत – "राजस्थानी लोकगीत" पृ. 2

जनजातीय (मीणा) लोकगीतों का वर्गीकरण

लोकगीतों के वर्गीकरण की समस्या का मूलभूत कारण यह है कि लोक जीवन में भावों का परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध रहने के कारण लोकहृदय से प्रस्फुटित गीतों में एक साथ कई भावों की एकरसता निहित रहती है। इसलिए किसी भी लोकगीत को मात्र किसी भाव विशेष का कहना कठिन होता है। इसी प्रकार एक ही लोकगीत कई प्रसंगो पर गाया जाता है।

जैसे – मीणा जनजाति में देवी–देवताओं के गीत प्रत्येक शुभ अवसर पर गाये जाते हैं तथा मीणा समाज का प्रायः हर एक पर्व, त्यौहार या उत्सव किसी न किसी धार्मिक भावना को साथ लिए होता है। ऐसी स्थिति में यह कहना कठिन हो जाता है कि उस समय गाये जाने वाले गीत मात्र त्यौहार के हैं या उत्सव के हैं अथवा भक्ति भावना के ?

मीणा लोकगीतों को अध्ययन की दृष्टि से निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है–

(i) पात्र (गायक) की दृष्टि से

(ii) शिल्प (गायन–विद्या) की दृष्टि से

(iii) विषयवस्तु की दृष्टि से

(i) पात्र (गायक) की दृष्टि से –

(क) बाल–गीत –

(1) बालकों के गीत –

- क्रीड़ा गीत
- ग्वाल गीत
- मनोरंजन गीत

(2) बालिकाओं के गीत –

- व्रत–त्यौहार गीत
- ऋतु गीत

(ख) स्त्री गीत –

(1) संस्कारो के गीत –

- आनुष्ठानिक गीत
- लोकाचार गीत

(2) व्रत–त्यौहार के गीत

(3) ऋतुओं के गीत

(4) उत्सव और मेलों के गीत

(5) नृत्य के गीत

(6) कृषि एवं श्रम के गीत

(7) भक्ति–भावना के गीत

(ग) **पुरूष गीत –**

(1) कृषि और श्रम गीत

(2) मेला गीत

(3) दंगल गीत

(4) भक्ति–भाव गीत

(ii) शिल्प (गायन–विद्या) की दृष्टि से –

(क) **दंगल गीत –**

(1) कन्हैया

(2) रसिया

(3) ख्याल

(ख) **नाट्य गीत –**

(1) गौठ

(2) लांगुरिया

(3) बखाण

(4) जागरण

(5) नृत्य गीत

(6) श्रम–गीत

(ग) **भाव गीत –**

(1) पर्व–उत्सव एवं त्यौहार गीत

(2) ऋतु गीत

(3) मेला गीत

(4) संस्कार गीत

(5) व्रत–उपासना गीत

(iii) विषय–वस्तु की दृष्टि से –

(क) संस्कार–विषयक गीत

(ख) ऋतु–पर्वोत्सव एवं त्यौहार गीत

(ग) व्रत–उपासना एवं भक्ति गीत

(घ) श्रम–परिहार गीत

(ङ) दांगलिक एवं मेले गीत

(च) अन्य गीत

जो विशेषता लोक संस्कृति की रही है – "विविधता में एकता", वही विशेषता उस संस्कृति के लोकगीतों में भी मिलती है अर्थात् इन लोकगीतों में वैविध्यपूर्ण एकरसता व्याप्त होती है।

जनजातीय (मीणा) लोकगीतों की विशेषताएँ –

लोकगीतों में सामूहिक लोकचेतना रहती है। मौखिक परम्परा पर आधारित होने के कारण इनमें परम्परागत या परम्परा से प्राप्त जीवन की अभिव्यक्ति के साथ–साथ जनमानस की नवीन उपलब्धियों का गायन होता है। परिणामतः जातीय विकास के साथ–साथ उसके लोकगीतों या लोक–साहित्य का कथ्य एवं शिल्प का विकास होता रहता है किन्तु यह विकास परम्पराओं के पैरों पर चलकर ही होता है। इस विकास में अनुपयोगी पुरातन छूटता चला जाता है। उपयोगी पुरातन विश्वास बनकर वर्तमान की भूमि पर स्थापित हो, भविष्य की सुखद रागिनी छेड़ता रहता है।

मीणा लोकगीतों के अध्ययन एवं विवेचन से हमें जो सामान्य एवं मूलभूत विशेषताएँ देखने को मिलती है वे इस प्रकार है –

(i) सामान्य विशेषताएँ

- (क) वातावरण की प्रधानता
- (ख) नैसर्गिकता एवं उन्मुक्तता
- (ग) रूढ़िगत अतिशयोक्ति
- (घ) निरर्थक शब्दों का प्रयोग

(ii) मूलभूत विशेषताएँ

- (क) प्रश्नोत्तरी शैली की प्रधानता
- (ख) रूढ़ संख्याओं का प्रयोग
- (ग) टेक एवं पुनरावृत्ति
- (घ) उच्च एवं तीव्र स्वर
- (ङ) नाट्य एवं अभिनय तत्व का समावेश
- (च) संगीतात्मकता (गायन शैली)

"कन्हैया" का सामान्य परिचय –

"लोकगीत" समुदायों की धरोहर है। ये पीढ़ी दर पीढ़ी अपनाये जाते हैं तथा उस समुदाय की आत्मा लोकगीतों की धुन में बोलती रहती है। राजस्थान के आदिवासियों के रहन–सहन, खान–पान, रीति–रिवाज, वेशभूषा, मूल्य–विश्वास आदि लोकगीतों में व्यक्त होकर इनकी संस्कृति के दर्शन कराती है जो सभ्य समाज से इन्हें भिन्न करती है।

आदिवासियों का लोकगीतों से गहरा लगाव रहा है क्योंकि लोकगीतों में इनकी आत्मा बसती है। यदि आदिवासियों के जीवन से लोकगीत एवं लोकनृत्य निकाल दिए जाऐं तो ये आदिवासी मनोरंजनहीन, प्राणहीन एवं नीरसता के साथ–साथ कृत्रिम जीवन जीने की ओर अग्रसर होने लगेगा जिससे सामाजिक संगठन एवं पारिवारिक प्रेम शून्य हो जाएगा।

प्रारम्भ से ही आदिवासी समूहों में ही रहते रहे हैं और इस सामूहिकता को ये निरन्तर बनाए रखे हुए भी है। वर्तमान में राजस्थान के सभी क्षेत्रों में इनका निवास देखा जा सकता है और प्रत्येक क्षेत्र में इनकी विभिन्न लोकविधाओं को देखा जा सकता है। इन्हीं विधाओं मे से "कन्हैया" लोकगायन की विधा अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है क्योंकि ये अपने समाज को इस गायकी के माध्यम से एकजुट रखने हेतु प्रयासरत है।

"कन्हैया लोकगीतों को प्रमुख रूप से निम्न भागों में वर्गीकृत करके जनजाति (मीणा) के लोग दंगलों में प्रस्तुत करते देखा जाता है–

1. भवानी
2. ठाढ़ी झड़ी
3. बैठक
4. बोल
   (i) चाँदा
   (ii) भींत
5. पद
6. दुबेला
7. झोला
8. झड़ी

उपर्युक्त भागों से एक "कन्हैया" बनता है और एक कथा में लगभग 5 से 8 डट्टे होते है।

नामकरण –

"कन्हैया" का साधारण शब्दों में अर्थ "कहन" अर्थात् कहने से लिया जाता है।

क्योंकि जब किसी कथा को विशेष शैली में लोकगायकों के द्वारा कहा जाता है तो स्थानीय लोगों ने इसे "कन्हैया" से सम्बोधित करना प्रारम्भ कर दिया होगा।

भौगोलिक स्थिति के अनुसार सवाई माधोपुर हिन्दुओं के इष्ट देव श्री कृष्ण की जन्मभूमि मथुरा से कुछ ही दूरी पर स्थित है जिससे इस गायनशैली के नामकरण होने के तथ्य स्थानीय कलाकारों से प्राप्त होते हैं।

स्वरूप एवं तत्व –

"कन्हैया" के स्वरूप को निम्नलिखित तत्वों के माध्यम से विश्लेषित किया जा सकता है –

(1) वस्तु
(2) संगीत एवं वाद्य यंत्र
(3) प्रस्तुतीकरण
(4) उद्देश्य

(i) वस्तु –

"कन्हैया" का कथ्य या विषय लोकप्रचलित धार्मिक एवं पौराणिक आख्यानों पर आधारित रहता है जिसमें रामायण, महाभारत आदि के मार्मिक एवं लोकप्रिय स्थल प्रमुख है।

(ii) संगीत एवं वाद्य यंत्र –

"कन्हैया" एक ताल प्रधान गायकी है। जिसमें चौपाई, सवैया आदि छन्दों में कथा को लयबद्ध करके गाया जाता है।

गाने वाला दल संगीत के अभिन्न अंग वाद्य यंत्रों का प्रयोग इस गायन के साथ करता है जिनमें घेरा, नौबत, ढफ, झांझ, मंजीरा आदि का स्थान प्रमुख है।

इस गायकी में वाद्ययंत्रों की उपलब्धता को अत्यधिक महत्व इसलिए नहीं दिया गया क्योंकि ये आदिवासी इसमें हाथ से ताली बजाकर ही लयबद्ध करते हैं और इसका गायन करते हैं।

(iii) प्रस्तुतीकरण –

चित्र सं. 2.1 : जनजातीय लोगो द्वारा 'कन्हैया' का प्रस्तुतीकरण

"कन्हैया" एक सामूहिक लोकगायकी है जिसमें प्रस्तुतीकरण के समय दल में कम से कम 50 से 60 व्यक्ति होते हैं। ये सभी एक खुले मैदान में गोल घेरे के रूप में हाथों में हाथ ड़ाले खड़े होते हैं। घेरे के बीचों बीच या सिरे पर 'नौबत', 'चंग', 'घेरा', आदि वाद्ययंत्र रखे होते हैं। घेरे के अन्दर दो मेड़िया (प्रधान गायक) होते हैं जो घेरे के अन्दर दोनों ओर (आमने–सामने) खड़े होते हैं। सर्वप्रथम प्रमुख मेड़िया "उठाण" बोलता है और उसके उपरान्त उस मेड़िया की ओर का आधा दल उसका अनुकरण करता है, अन्तिम बोल के टूटने साथ ही सामने वाला मेड़िया और शेष आधा दल उस बोल को पकड़ कर गाने लगते हैं, यही क्रम निरन्तर चलता है। पूरा दल एकसाथ लयबद्ध वाद्ययंत्रों के साथ "कन्हैया" में कथा का गायन कर प्रस्तुतीकरण करता है।

(iv) उद्देश्य –

"कन्हैया" लोकगायकी का उद्देश्य मात्र मनोरंजन ही नहीं है। मीणा जनजाति वर्तमान समय में सभ्य समाज के सम्पर्क में आकर अपनी पुरातन संस्कृति के स्वरूप को परिवर्तित होता देखकर इसके संरक्षण के साथ अपनी एकजुट एवं सामूहिकता को सुरक्षित करने के उद्देश्य से "कन्हैया" का गायन निरन्तर कर रही है।

लोककथाएँ, लोकगाथाएँ लोकरंजन के अतिरिक्त शिक्षा–दीक्षा का भी महत्वपूर्ण साधन मानी गई है जिससे लोक संचित ज्ञान हस्तान्तरित होकर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक जाता है। इन्हें लोकजीवन का अलिखित इतिहास दर्शन भी कहा जा सकता है जिससे ये प्रेरणा लेकर अपने जीवन में सुधार कर सकते हैं। इसी उद्‌देश्य के कारण यह लोकगायन आज भी अपना अस्तित्व इस समाज में बनाए हुए है।

अध्याय तृतीय

- **डांग प्रदेश की जनजातीय लोकगायकी : कन्हैया का ऐतिहासिक विवरण**

अध्याय तृतीय

डांग प्रदेश की जनजातीय लोकगायकीः कन्हैया का ऐतिहासिक विवरण

लोकसंगीत मानव के हृदय के सरल स्वाभाविक वह उद्‌गार है जो ना जाने कब समाज में स्वतः फूट पड़ते हैं। लोकगीतों में उस माटी की सुगन्ध आती है, यहाँ तक ही जिस समाज में वह रहता है, उसके द्वारा मानव जीवन के आरम्भ से अन्त तक की छवि दिखाई देती है।

जब मानव की बुद्धि का विकास भी नहीं हुआ था, मानव तब भी प्रकृति की सुन्दरता को देखकर झूमता था। धीरे–धीरे अपने हृदय के उद्‌गारों को प्रकट करने के लिए मानव ने वाणी का प्रयोग आरम्भ किया। वाणी के साथ–साथ गुनगुनाना आरम्भ किया।

इसी विषय में आचार्य बृहस्पति ने कहा है कि – हमारी वाणी का उतार–चढ़ाव के परिणामस्वरूप संगीत के सात स्वरों और तीन सप्तकों का विकास हुआ। वाणी में उतार–चढ़ाव के साथ ही साथ हमारी चेष्टाओं और प्रयुक्त शब्दों की गति में भी विविधता आती है।

लोक क्या है ? इस शब्द की उत्पति कब हुई ? इसके विषय में विद्वानों में अनेक प्रकार के मतभेद है अर्थात् इस विषय में कोई निश्चित मत प्राप्त नहीं हो सका है। यूरोपियन व भारतीय भाषाविद् भी इस व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में किसी एक निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके।

'ऋगवेद' में देहि लोकम का प्रयोग हुआ है 'लोकम्' का प्रयोग स्थान के लिए हुआ है। वेदों में इसे दो प्रकार का माना गया है, पार्थिव और दिव्य। इसलिए हम कह सकते हैं कि हमारी संस्कृति लोक से अलग नहीं हो सकती। वास्तव में तब समाज ही लोक कहलाता है।

यह शब्द एंग्लो–सेक्शन शब्द 'फोक' जैसा ही है। 'फोक' का पर्यायवाची लोक कहा जा सकता है यानि 'जन' या 'आम' फोक के अर्थ में आते हैं। जन का अर्थ है – मानव समाज, फोक का अर्थ है – अपद, असंस्कृत और मूड़ समाज।

भारत में आर्य जाति के आगमन पर यहाँ के मूल निवासियों से संघर्ष हुआ, उसके फलस्वरूप वेद और वेदेत्तर स्थिति आई। 'लोक' को वेदेत्तर वेद विरोधी मानने लगे परन्तु धीरे–धीरे 'लोक' अपनी संकुचित स्थिति से निकल आया और उसकी भावना, वैदिक और अवैदिक दोनों को मानने लगा।

इस प्रकार 'लोक' परम्परा का संरक्षक, सहेजने वाली, अनुभूति की संवेदना – पूर्ण सतत् संवाहक माने जाने लगा। इस प्रकार हमारी 'संस्कृति' लोक से अलग नहीं रह सकती बल्कि यह कहना अनुचित नहीं होगा कि हमारी संस्कृति 'लोक' से उत्पन्न हुई है। कुछ समय पहले इसे अनपढ़, गंवार, निम्न स्तरीय, और अनुपयोगी समझा जाता था वहीं आज नए दृष्टिकोण को विस्तृत करने वाला माना जाता है।

हिन्दी का 'लोक' शब्द एंग्लो शब्द 'फोक' का पर्यायवाची 'फोक' समझा जाता है किन्तु वास्वत में 'फोक' इनसे भिन्न है। 'जन' प्राचीन शब्द है जिसका अर्थ 'मानव समाज' होता है। प्रयोग व परम्परा के आधार में 'फोक' के साथ 'लोक' की ही समानता दृष्टिगोचर होती है, लेकिन 'लोक', 'फोक' से अधिक विशाल स्वर का है।

लोक गीतों में भाव, लय और मुग्धता पर अधिक ध्यान दिया जाता रहा है।

लोकगीत हमारे सामाजिक, धार्मिक, पारिवारिक विकास के इतिहास को प्रकट करने वाले गीत होते हैं। यह देश की अमूल्य निधि होते हैं।

मानव कण्ठ से प्रस्फुटित हुए वे अनजान बोल जो किसी भी अवसर पर प्रस्फुटित होते रहते हैं, 'लोकगीत' कहलाते हैं।

ये धरती के स्वाभाविक बोल हैं तथा ये प्रकृति के उद्‌गार होते हैं। इनमें सरसता, सरलता, मधुरता और लय स्वाभाविक गुण है। इनमें करूणा, हास्य, श्रृंगार और वीरता का समावेश रहता है।

ये लोकगीत बनते हैं, बिगड़ते हैं, मिटते हैं, किन्तु फिर उत्पन्न होते हैं।

डॉ. सदाशिव फड़के का कहना है कि – ''शास्त्रीय नियमों की विशेष परवाह न करके सामान्य लोक व्यवहार के उपयोग में लाने के लिए मानव अपनी आनन्द–तरंग में जो छन्दोबद वाणी सहज उत्पन्न करता है, वही लोकसंगीत है।''

श्री गिरजा कुमार माथुर के विचारों में – ''लोकगीत जीवन की सामूहिक चेतना का फल होता है और वे जनता के सामाजिक प्रयोजन से निःसृत होते हैं। लोकगीतों को समझने से जनता की संस्कृति और परम्परा को समझा जा सकता है।''

राजस्थान लोक संस्कृति की दृष्टि से अनुपम प्रदेश है। विभिन्न जातियों के सांस्कृतिक समन्वय से इस प्रदेश की संस्कृति का रूप और अधिक निखरा है। इन जातियों में आदिवासी जातियों का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है, जिन्हें अलग करके न तो राजस्थानी लोक संस्कृति को ही, न लोक साहित्य को ही कोई रूप दिया जा सकता है। मीणा जनजाति उन आदिवासी जातियों में से हैं जो दीर्घकाल से यहाँ की संस्कृति और लोक साहित्य को अपनी संगीत कला के माध्यम से सतत् गति प्रदान करती रही है।

मीणा जनजाति अपने साहस और परिश्रम के लिए आज भी प्रसिद्ध है इन्होने अपने परिश्रम के बल से ही राजस्थान की धरती को अन्नपूर्णा बनाया है। कृषि ही इनके जीवन का एकमात्र आधार है यही कारण है कि मीणा समुदाय आज भी नगरीय सभ्यता की चकाचौंध से दूर ग्रामवासी बना हुआ है।

कर्म ही इनके जीवन का मूल मंत्र है। यह कर्म भावना ही इनके अभावग्रस्त जीवन में उल्लास और उमंग भरती रहती है। स्वयं इनका जीवन ही कर्मगीत है, जिसमें विविध स्वर भरे हुए है।

मीणा जनजाति राजस्थान के भू–भाग पर समान रूप से वितरित नहीं है कहीं इसकी जनसंख्या पचास प्रतिशत से अधिक है तो कहीं न के बराबर। प्रदेश के जयपुर, अलवर, सवाई माधोपुर, भरतपुर, सीकर, कोटा, झालावाड़, बूंदी, उदयपुर, बॉसवाड़ा, चित्तौड़गढ़, डूँगरपूर, भीलवाड़ा, टोंक, सिरोही, पाली और धौलपुर में इनका बाहुल्य है। ये जिले उत्तर–पूर्व तथा दक्षिण–पूर्व में स्थित है। अतः यह भी कहा जा सकता है कि यह जाति अरावली और विंध्य पर्वतमालाओं में या उसके निकट अपनी विशिष्ट जीवन पद्धति एवं संस्कृति के साथ निवास करती है।

आदिम जनजातियों में से प्रमुख मीणा जनजाति की जनसंख्या में निरन्तर अभिवृद्धि हो रही है। पूर्वकाल में अनवरत संघर्ष के कारण अपनी शक्ति क्षीण हो जाने के फलस्वरूप पर्वतों एवं बीहड़ों में निवास करने वाली यह जाति कार्य के आधार पर दो वर्गो में विभाजित हो गई–

(1) जमींदार

(2) चौकीदार

जमींदार मीणा "पुरानावासी" और खेतीहर के नाम तथा चौकीदार मीणा "नयावासी" के नाम से भी जाने जाते हैं। इनमें जो खेती का कार्य करते थे वे जमींदार तथा जो रक्षा–सुरक्षा का कार्य करते थे चौकीदार कहलाए। किन्तु यह विभाजन नाम मात्र का ही रह गया है।

वर्तमान में इस जाति को मैना, मेना, मीणा, मीना आदि अनेक प्रकार से प्रचलित देखा जा सकता है। यह कैसे पड़ा या 'मीणा' शब्द की व्युत्पत्ति कैसे हुई, इसको लेकर अनेक मत–मतान्तर देखने को मिलते हैं इस मतभेद के कारण इसकी प्राचीनता तथा वैदिक, पौराणिक, ऐतिहासिक ग्रन्थों में विभिन्न सन्दर्भो में एवं रूपों में पाया जाना है। इन प्रयोगों के परिणामस्वरूप एक ओर अलौकिक (दिव्य) मान्यताऐं प्राप्त होती है तो दूसरी ओर राजवंशीय परम्परा से जुड़ी हुई मान्यता मिलती है।

पौराणिक मान्यता मीणा जाति या शब्द की व्युत्पत्ति के सन्दर्भ में धार्मिक, अलौकिक आस्था को व्यक्त करती है। ऐतिहासिक मान्यता मीणा जनजाति को वीर जाति के रूप में प्रस्तुत करती है।

इन दोनों मान्यताओं के अनुरूप ही "मीणा" शब्द की व्युत्पत्ति के दो स्रोत मिलते हैं– पौराणिक और ऐतिहासिक।

पौराणिक मान्यताऐं–

"मीना" शब्द की उत्पत्ति के सन्दर्भो में प्राप्त पौराणिक मान्यताओं में भी ऐक्य नहीं है इसका कारण पौराणिक ग्रन्थों में "मीना" शब्द का विभिन्न सन्दर्भो में प्रयोग होना है। जैसे –

यजुर्वेद –

(1) "विषमेभ्यों मेनालम्"

(2) "अल वारणे मीनान लति वारयतीति मीनालस्तदपत्यम् मैनालम्"

– महिधर भाष्यम्

अग्निपुराण –

(1) उषा वास्तु प्रवच्यामि सर्गे पंच सुत्तारततः।

मीन मेना तथा वृत्ता अनुवृत्तातथेव च।।

स्कन्द पुराण –

"मीनाय मीननाथाय सिद्धाय परमेष्ठिने।

कायान्तकाय बुद्धाय, बुद्धिनां पतयेनमः।।"

श्रीमद भागवत –

भूयोदश गुखण्डाश्च मीना एकादशेवतु।।

एते भोक्ष्यन्ति पृथ्वी दश वर्ष शतानि च।

नवाधि कांचनवति मीना एकादश क्षितिभ।।

उक्त सभी – मेनालम्, मीनान, मेहना, मीन, मेना, मीना आदि प्रयोग विभिन्न सन्दर्भो में आए हैं, यही कारण है कि 'मीना' शब्द की व्युत्पत्ति के सन्दर्भ में एक साथ अनेक मान्यताएँ मिलती हैं उनमें से कुछ इस प्रकार है–

मत्स्यपुराण के आधार से –

"मीना" शब्द की व्युत्पत्ति 'मत्स्य' से 'मीन' और 'मीन' से 'मीना' के रूप में हुई है।[17]

मान्यता है कि मीनों की उत्पत्ति मत्स्य के उदर से हुई है इस कारण इसका नाम 'मीन' पड़ा जो बदलते–बदलते अपने वर्तमान रूप तक आ पहुँचा है।[18]

---

[17] मुनि मगन सागर – मीन पुराण, भूमिका पृ. 5

'मत्स्य' विष्णु के दशावतारों में से पहला अवतार भी है। इस दृष्टि से मत्स्य का अर्थ विष्णु से लिया जाता है और 'मत्स्य' शब्द से ही 'मीना' शब्द की व्युत्पत्ति मानी जाती है –

चित्र सं. 3.1 : विष्णु का मत्स्य अवतार

मत्स्य > मीन > मीना – 'मीन' शब्द 'मि' और 'इन' के योग से बना जिसका भावार्थ है – विष्णु।[19]

अतः इस मान्यता के अनुसार मीना जाति का सम्बन्ध विष्णु के 'मत्स्य' अवतार से जुड़ता है।

उपर्युक्त विवरण से 'मीना' जाति की उत्पत्ति के साक्ष्य उपलब्ध होते हैं, परन्तु 'मीणा' शब्द की उत्पत्ति कब और कैसे हुई यह वर्तमान में विवादास्पद विषय है। परन्तु पौराणिक और ऐतिहासिक विद्वानों के तथा स्थानीय लोगों का मत है कि यह भाषा प्रभाव के कारण अस्तित्व में आया होगा, क्योंकि जिस प्रकार 'पानी' शब्द को 'पाणी' आम बोलचाल की भाषा में स्थानीय लोगों द्वारा उपयोग में लाया जाता रहा है। ठीक उसी प्रकार समय/काल परिवर्तन होने के साथ–साथ 'मीना' शब्द की वर्तनी 'मीणा' हो गयी। अब कुछ लोग 'मीना' तथा कुछ 'मीणा' जाति का प्रयोग करते देखे जाते हैं।

मुनि मगन सागर जी ने भी यही सम्भावना व्यक्त की है कि "मनोपासका : मीनाः" अर्थात् जो 'मीन' नामक देवता की उपासना करते थे, उन्हे दूसरे लोग "मीना" कहते थे। यह धार्मिक शब्द कालान्तर में जाति बोधक बन गया।[20]

---

[18] मीना जी.के. – "राजस्थान के मीणा", इतवारी पत्रिका, पृ 8–9

[19] द्वारिका प्रसाद चतुर्वेदी "संस्कृत शब्दार्थ–कौतुभ", पृ. 853

[20] मुनि मगन सागर – "मीन पुराण", भूमिका, – पृ. 5

आर. एन. सोलेतोरे का इस सन्दर्भ में कथन है कि मीनाओं में आम धारण है कि उनका सम्बन्ध भगवान विष्णु के मत्स्यावतार से हैं तथा उनका उद्‌भव वैदिक क्षत्रियों – "मेइना" से हुआ है।[21]

स्कन्द एवं शिवपुराण के आधार से –

"स्कन्द पुराण" के अनुसार कैलाशपति शिव जी 'मीनानाथ' कहलाते थे और उनके उपासक "मीना"।

'शिवपुराण' के अनुसार दक्ष की आठ कन्याओं में से एक 'मेना' नाम की कन्या थी जिसका विवाह 'हिमाचल' के साथ हुआ तथा जिसके उदर से पार्वती एवं सौ पुत्रों का जन्म हुआ जो "मेनाक" कहलाए। इन्हीं सौ पुत्रों से मीणाओं के सौ कुल स्थापित हुए। पार्वती का विवाह शिव से हुआ – इस प्रकार यह मान्यता मीणा जनजाति को शिव उपासक ठहराती है।

वर्तमान में भी मीणा जनजाति में शिव उपासना का विशेष महत्व है।

अग्निपुराण के आधार से–

ऊषा की जिन कन्याओं का विवाह कश्यप जी के साथ हुआ था उनमें से पहली "मीना" और "मैना" के नाम से प्रसिद्ध थी इन्हीं की सन्तानें मीना, मैना आदि नामों से प्रसिद्ध हुई।

यह मान्यता भी मीना जनजाति की प्राचीनता की ओर संकेत करती है।

मनु स्मृति के आधार से–

यह मान्यता मीना जाति की उत्पत्ति को 'मनु' से जोड़ती है। 'मनु', मछली (मीन) के सहयोग से ही प्रलय काल में अपनी रक्षा कर पाये थे।

अतः यह धारणा है कि 'मनु' ने प्राण रक्षिका 'मीन' को अपने ध्वज मे स्थान दिया, आगे चलकर उस ध्वज को धारण करने वाले "मीना" कहलाये।

उपरोक्त पौराणिक सन्दर्भो के आधार से अनेक मान्यताऐं प्रचलित है जो मीणाओं की उत्पत्ति को प्राचीन जाति के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है।

सत्यता कुछ भी रही हो परन्तु इन मान्यताओं से मीणा जनजाति के सन्दर्भ में कुछ महत्वपूर्ण तथ्य अवश्य प्राप्त होते हैं जैसे–

---

[21] आर.एन. सोलेतोरे – "न्यू एण्टीक्वेरी ऑफ इण्डिया", पृ. 389

- ❖ मीणा जनजाति भारत की प्रचीनतम जातियों में से एक है।
- ❖ मीणा जनजाति का किसी न किसी रूप में मत्स्य (मीन) से कोई न कोई भावनात्मक सम्बन्ध अवश्य रहा हैं।
- ❖ प्राचीन काल में यह जाति वीर, युद्धप्रिय एवं शासक वर्ग में से रही है।
- ❖ मीणा जनजाति विष्णु एवं शिव की उपासक रही हैं।

मीणा जनजाति की प्राचीनता असंदिग्ध है किन्तु इस जनजाति का दुर्भाग्य रहा है कि प्राचीनतम होते हुए भी अपने इतिहास को लगभग खो चुकी है। इसका अतीत लुप्तप्रायः ही है।

जो भी बिखरे हुए पन्ने (सूत्र) उपलब्ध होते हैं उनसे इनकी संस्कृति आदि का केवल अंदाजा ही लगाया जा सकता है।

साथ ही इतना स्पष्ट है कि इनका अतीत निश्चित ही गौरवशाली रहा होगा।

मीणा जनजाति के ऐतिहासिक विवरण को अनेक धारणाओं तथा मान्यताओं से जोड़कर देखा जाता है जो इनकी प्राचीन मान्यताओं से प्राप्त ज्ञान को प्रस्तुत करती है तथा इन्हें सभ्य समाज में विशिष्ट स्थान प्रदान करती है। क्योंकि यह शोध "कन्हैया" लोकगायन पर विशेष रूप से दृष्टि डालता है इसीलिए ये सभी मान्यताऐं इसकी ऐतिहासिकता को भी प्रमाणित करने हेतु प्रयासरत है।

महाकाव्य काल में संगीत –

महाकाव्य काल भारत का एक गौरवमय काल रहा है। इस काल में विश्व के दो प्रसिद्ध महाकाव्यों की रचना हुई। प्रथम– रामायण, द्वितीय– महाभारत, जो भारतवर्ष की अमूल्य धरोहर है। इस काल के संगीत को अलग–अलग सन्दर्भो में देखा जा सकता है। साहित्य के वैविध्य एवं परस्पर वैभिन्नय से यह भली–भाँति ज्ञात होता है कि संगीत समाज के विभिन्न क्षेत्रों में प्रविष्ट हो चुका था तथा संगीत का समाज में विविध रूप से उपयोग होने लगा था।

महाभारत काल में संगीत –

महाभारत काल में संगीत के प्रचुर उल्लेख मिलते हैं। महाभारत में संगीत की पूर्व प्रचलित तीनों धाराओं को देखा जा सकता है– गायन, वादन एवं नृत्य।

महाभारत में साम व गाथा गान का बहुत उल्लेख प्राप्त होता है। गाथा का अर्थ राजा व यजमान की प्रशस्ति का गायन ही है यहाँ इसी तरह के उल्लेख प्राप्त होते हैं। अतः राजाओं की प्रशस्ति का गायन 'गाथा गायन' ही कहा जाता था।

गायन के लिए "गीत" संज्ञा बहुधा अनेक स्थलों पर प्रयुक्त की गई है।

लौकिक संगीत उस काल में दिन–प्रतिदिन विकास कर रहा था। गेय प्रबन्धकों के अन्तर्गत गाथा, मंगलगीतों, स्तुति आदि के उल्लेख मिलते हैं।

इस काल में धार्मिक संगीत में अनेक प्रकार के नृत्यों के साथ रासलीला नृत्य की खोज भी इसी समय की मानी जाती है जिसके अन्तर्गत श्री कृष्ण गोपियों और ग्वालों के साथ लीलाएँ किया करते थे। श्री कृष्ण स्वयं संगीत के महान् पंड़ित थे।

अज्ञातवास के समय अर्जुन ने षठ्क बृहन्नला का रूप धारण कर राजा विराट की पुत्री उत्तरा को संगीत की शिक्षा दी थी।

संगीत को समाज में पर्याप्त सम्मानित स्थान प्राप्त था क्योंकि इसका सम्बन्ध धर्म से जोड़ा गया था।

रामायण काल में संगीत –

आदि कवि वाल्मीकि द्वारा रचित महाकाव्य 'रामायण' भारतीय संस्कृति का प्राचीन उत्कृष्ट महाकाव्य है। रामायण के अनेक श्लोंको से ऐसा ज्ञात होता है कि उस समय संगीत के अन्तर्गत गायन, वादन तथा नृत्य तीनों का समावेश था।

इस काल मे संगीत जीवन का अभिन्न अंग था। अयोध्या, लंका व किष्किन्धा आदि नगरों में संगीत सदैव ही गुंजायमान रहता था। रामायण के अनेक प्रसंगों में संगीत का वर्णन मिलता है।

इन्हीं प्रसंगो में से एक प्रसंग – सीता के पुत्रों लव–कुश के द्वारा श्रीराम के राज्य में जाकर कथा का गायन किया गया, इसी प्रसंग से मीणा जनजाति "कन्हैया" गायन की उत्पत्ति को मानकर चलती है क्योंकि जिस गायनशैली में लव–कुश ने कथा को गाकर राजसभा में सुनाया वहीं से इस गायनशैली का उद्भव होना माना गया। जो समय/काल परिवर्तन के साथ–साथ अपने अस्तित्व को बचाए हुए आज भी गायी जा रही है।

हालांकि यह जानकारी कोई लिखित प्रमाण के रूप में प्राप्त नहीं हो पाती क्योंकि इसके पश्चात् बौद्धकाल, जैन काल, मौर्यकाल, कनिष्क काल, गुप्तकाल, हर्षवर्धन काल आदि में ऐसी कोई कथा इसके उपस्थिति के प्रमाण के रूप में प्राप्त नहीं हो पाती। परन्तु राजपूत काल में संगीत को देखने पर यह मालूम होता है कि भारत में मुस्लिम शासन की आधारशिला मुहम्मद गौरी ने चौहान वंश के प्रतापी राजा पृथ्वीराज को हराकर रखी। मुस्लिम शासन के प्रथम चरण में मुस्लिम शासकों का उद्देश्य भारतीय कला एवं संस्कृति का हनन कर अपनी संस्कृति का प्रचार–प्रसार करना था। सम्भवतः अपनी इसी संकुचित मनोवृत्ति के कारण इन मुस्लिम राजाओं ने भारतीय साहित्य एवं संगीत की अमूल्य निधि रूपी ग्रन्थों को नष्ट कर दिया होगा।

परन्तु फिर भी जो गौरवशाली इतिहास था उसे लोकगायन के माध्यम से सुरक्षित रखने का प्रयास इन जनजातियों के द्वारा किया गया।

राजपूत काल में "गीत गोविन्द" की रचना की गई, यह समपूर्ण ग्रन्थ संगीतमय है और इसका हर पद संगीत से परिपूर्ण है। "गीत गोविन्द" में प्रत्येक पद की समाप्ति पर संगीतज्ञ जयदेव ने राग व ताल का निर्देश दिया है।

"कन्हैया" की गायन शैली पर दृष्टि डालने पर यह ज्ञात होता है कि यह ताल प्रधान, लयबद्ध गायकी रही है जिसका विभिन्न कालों में स्वरूप परिवर्तित होता चला गया।

मुगलकाल में संगीत –

राजनैतिक आन्तरिक विघटन के कारण मुगल काल आरम्भ के समय ऐसा रहा कि हम अपने अस्तित्व को सुदृढ़ नहीं रख सके।

1526 ई. में बाबर की विजय हिन्दुस्तान के कुछ हिस्सों में हुई और लगातार यह वंश भारतीय सत्ता को हस्तगत करता चला गया।

अपनी सफलता के बढ़ते हुए कदम के साथ संगीत व संस्कृति भी लगातार प्रचलित हो रही थी।

बाबर संगीत का महान् प्रेमी था, बाबर का पुत्र हुमायूँ भी संगीत प्रेमी था। हुमायूँ को संगीत का आध्यात्मिक रूप पसन्द था।

इसी प्रकार अपनी सफलता के बढ़ते हुए कदमों के साथ 1557 ई. में अकबर के शासनकाल का प्रथम चरण तक आ पहुँचा था। यह काल भारतीय संगीत, साहित्य कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

मुगलों के आक्रमण से भारतीय संगीत में कई सोपान बदले किन्तु संस्कृति की नींव गहरी व मजबूत होने के कारण आगे निर्मित होने वाले सभी भवन इस पर आधारित है।

मोहम्मद गौरी के साथ शेख माईनुद्दीन चिश्ती जैसे मुसलमान भी भारत में आये, इनके अनुयायियों ने भारतीय लोकाचार, भाषा एवं संस्कृति आदि को अपनाया। मौलवियों के विपरीत चिश्ती परम्परा के सूफी लोग भक्ति संगीत को स्वीकार करते हैं।

अपने गीतों के लिए इन्होंने भारतीय धुनों को चुना। इस कारण हिन्दु समाज भी सूफी परम्परा की ओर आकर्षित हुआ। इस समय सूफी सन्तों ने भारतीय संगीत को सम्मान एवं प्रोत्साहन दिया साथ ही संस्कृति का आदान–प्रदान भी हुआ।

अकबर के शासन काल में संगीत–

अकबर के काल को भारतीय संगीत का स्वर्णिम काल माना गया है, इस काल को संगीत तथा भक्ति काव्य के समन्वय की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण माना जाता है। जिसके द्वारा भारतीय संगीत की दार्शनिक पृष्ठभूमि का विकास व प्रचार सम्भव हुआ।

इसी काल में सूरदास जी के पद सर्वसाधारण में बहुत प्रचलित थे। सूरदास के संगीतमय पदों में संगीत की विभिन्न शैलियाँ दृष्टिगोचर होती है।

इन्हीं के समकालीन 'कबीर' समाज के निम्न वर्गो के प्रतिनिधि के रूप में जाने जाते थे, जिन्होंने भक्ति एवं ज्ञान को एक नया रूप देकर सामान्य जन–जीवन में क्रान्ति का शुभारम्भ किया। कबीर की सादुक्कड़ी भाषा में जिस प्रकार सभी प्रान्तीय भाषाओं में से कहीं अधिकता न न्यूनता है। उसी प्रकार उसमें स्वर व ताल की स्पष्ट विभिन्नता विद्यमान है। कबीर ने संगीत के भावपक्ष को उत्कृष्ट बनाने में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया।

इन्हीं के समकालीन ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर संगीत प्रेमी शासक थे इनका विवाह मृगनयनी नामक कन्या से हुआ जो एक देहाती कन्या थी। इसी कारण ध्रुवपद शैली के रचना एवं विकास को इससे जोड़कर देखा जाता है।

ऐसा माना जाता है कि ध्रुवगीति में आवश्यक परिवर्तनों के साथ 'ध्रुवपद' की रचना मानसिंह द्वारा की गई।

आदिवासी लोकगायन "कन्हैया" की गायन शैली को ध्रुवपद के समरूप इसलिए माना जा सकता है। ध्रुवपद को स्वर, शब्द, ताल और लय प्रधान गायन शैली के साथ मर्दाना गीत के रूप में जाना जाता हैं। वर्ण्य विषय वस्तुतः ईश्वरी उपासना एवं गुणों का गान हैं, ये स्तुतिपरक है। शुद्ध और स्पष्ट शब्दोच्चारण और स्वरोच्चारण, ध्रुवपद की विशेषता है, इसलिए माना जा सकता है कि इस गायन शैली का अनुसरण कर "कन्हैया" का सामूहिक रूप से गायन किया जाने लगा होगा।

ध्रुवपद का आविष्कार और विकास कई विद्वानों के मतानुसार 15वीं शताब्दी के आस–पास माना जाता है वहीं संत दादूदयाल का जन्म 1544 ई. का माना जाता है ये निर्गुण उपासक थे। इनके उपदेशो का आदिवासियों पर भी अत्यधिक प्रभाव पड़ा जिसके फलस्वरूप इन्होंने इनके उपदेशों को अपने गायन में सम्मिलित करना आरम्भ किया होगा।

ऐसा माना जाता है कि ध्रुवपद गायन की प्रमुख चार वाणियाँ

(1) गोबरहार वाणी, (2) डागुर वाणी, (3) खण्डार वाणी, (4) नौहार वाणी, प्रचलित थी।

इनमें खण्डार वाणी का सम्बन्ध राजा सम्मोखन सिंह से माना जाता है, जो कि अकबर के दरबार में प्रसिद्ध वीणा वादक थे, इनका विवाह तानसेन की कन्या से हुआ। चूँकि इनका निवास स्थान 'खण्डार' नामक स्थान था, इसलिए इस वाणी का नाम "खण्डार वाणी" पड़ा।

वर्तमान परिपेक्ष में देखने पर 'खण्डार', राजस्थान के सवाई माधोपुर जिले की प्रमुख आठ तहसीलों में अपना स्थान रखता है। अतः यहाँ की लोकगायकी "कन्हैया" का ध्रुवपद की खण्डार वाणी से सम्बन्धित होना माना जा सकता है।

औरंगजेब काल में संगीत–

अकबर के बाद जहाँगीर (1605–1626) का शासन रहा वह भी संगीत प्रेमी था परन्तु इसके समय में श्रृंगारिक संगीत अधिक विकसित हुआ। अकबर के काल की तरह इसके समय में भी हिन्द–मुस्लिम संस्कृतियों का आदान–प्रदान होता था। जहाँगीर की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र शाहजहाँ के शासनकाल में संगीत की रीति परम्परा का प्रादुर्भाव हुआ। शाहजहाँ स्वयं एक मधुर एवं हृदयग्राही गायक था। इनके दरबार में संगीत सम्मेलन एवं प्रतियोगिता आदि का आयोजन करके समय–समय पर कुशल कलाकारों को सम्मानित किया जाता था। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि "कन्हैया" जैसी अन्य लोक गायकियों के दंगलों का आयोजन उन्हीं के परिणाम स्वरूप प्रचलन में आया होगा और तभी से निरन्तर आयोजित किए जा रहे हैं।

शहजहाँ के बाद औरंगजेब राजा बना जिसने (1658–1707) तक शासन किया। यह संगीत का महान विरोधी शासक कहलाया परन्तु फिर भी अकबर, जहाँगीर व शाहजहाँ की भाँति औरंगजेब की प्रशंसा में अनेक ध्रुवपद मिलते थे। प्रारम्भ में ये संगीत विरोधी नहीं था लेकिन मुख्य रूप से दो कारणों से संगीत से घृणा करता था प्रथम राजनीतिक कारणों से, क्योंकि उसके पिता शाहजहाँ ने संगीत के वशीभूत होकर एक आज्ञा–पत्र पर बिना पढ़े ही हस्ताक्षर कर दिए थे।

दूसरा कारण कि संगीत अपनी प्राचीन पवित्रता पूर्ण रूप से खो चुका था और "संगीत मनुष्य को पतन की ओर ले जा रहा हैं"– यह विचार उसके हृदय में बैठ गया।

यद्यपि इसके काल में राज दरबारों में संगीत कला को प्रोत्साहन नहीं मिला फिर भी संगीत की चर्चा एवं प्रचार अवरूद्ध नहीं हुआ। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि उसी समय से लोक संस्कृति के संरक्षण हेतु स्थानीय लोगों ने अधिकांश सांगीतिक आयोजन रात्रि के समय करना प्रारम्भ किया होगा। जिसकी झलक आदिवासियों के "लोक–गायन" में प्रमुखतः देखने को मिलती है।

स्वतंत्रता से पूर्व संगीत–

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् अलग–अलग, छोटी–छोटी रियासतें बन गई। इन रियासतों के राजाओं में से जिनको संगीत कला से प्रेम था, उन्होंने संगीत कला को आश्रय प्रदान किया।

18वीं शताब्दी से मुगलों का शासन धीरे–धीरे समाप्त होने लगा और अंग्रेजों का शासकीय प्रभुत्व बढ़ने लगा फलस्वरूप संगीत की धारा कुछ अवरूद्ध सी हो गई। अंग्रेजों के अत्यधिक प्रभाव के कारण रियासतों में पनपने वाला संगीत भी आश्रयहीन हो गया था। भारतीय शासकों एवं जनता पर अंग्रेजी सभ्यता की छाप पड़ने लगी थी। शासक वर्ग की उदासीनता के कारण संगीत निम्न श्रेणी के व्यवसायी लोगों की धरोहर बन गया था। इसी कारण लोग संगीत को हेय दृष्टि से देखने लगे थे। संगीत की पवित्रता क्षीण हो चुकी थी और मात्र भोग विलास की वस्तु के रूप में प्रयुक्त होने लगी थी।

यूरोपीय शिक्षा प्राप्त कर युवक–युवतियों ने भारतीय संगीत की अवहेलना कर यूरोपीय संगीत को अपनाने का प्रयास किया परन्तु फिर भी आम जनता का सम्बन्ध तो भारतीय संगीत से ही था। अतः विशेष अवसरों व उत्सवों पर भारतीय संगीत का ही आयोजन होता था। जिनमें "लोक संगीत" के अनेक प्रकारों का होना प्रमाणिक रूप में अनेक ग्रन्थों में उल्लेखित भी किया जाता रहा है।

स्वतंत्र भारत में संगीत–

अन्ततः प्राचीनकाल से वर्तमान समय तक संगीत के विकास में समय–समय पर अनगिनत बाधाएँ उत्पन्न होती रहीं, परन्तु संगीत अपनी शक्ति सामर्थ्य के कारण कभी धीमी तो कभी तीव्र गति से निरन्तर विकास के पथ पर अग्रसर रहा। आधुनिक काल में संगीत अपनी गति से प्रगति कर रहा है।

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व अनेक संगीतज्ञों व शिक्षाविदों ने भारतीय संगीत को सुव्यवस्थित सुनियोजित एवं सम्पन्न बनाया। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत की राष्ट्रीय सरकार ने संगीत को संरक्षण प्रदान किया क्योंकि किसी भी देश की उन्नति व विकास तभी सम्भव है, जब राजनैतिक व आर्थिक विकास के साथ–साथ कला व संस्कृति का भी विकास एवं प्रचार हो। इसलिए पराधीन भारत में जो संगीत पतन की ओर जा रहा था उसके उत्थान के लिए वर्ष 1953 में "संगीत नाटक अकादमी" तथा 1954 में "ललित कला अकादमी" की स्थापना की गई। ऐसी राष्ट्रीय संस्थाऐं व प्रान्तीय सरकार भी संगीत कला को प्रोत्साहित करने हेतु कलाकारों को सम्मानित करती है।

राष्ट्रीय सरकार शास्त्रीय संगीत के साथ–साथ लोक संगीत को भी पर्याप्त प्रोत्साहन प्रदान करती है तथा अन्तर्राष्ट्रीय जगत में भारतीय संगीत की पहचान बनाने के लिए समय–समय पर कार्यक्रमों का आयोजन कर लोक संगीत के कलाकारों को भी अवसर प्रदान करती है।

संगीत के उत्थान के लिए ही 'आकाशवाणी' ने संगीत का राष्ट्रीय कार्यक्रम वर्ष 1952 से प्रसारित करना शुरू किया, जिसमें शा़स्त्रीय संगीत एवं लोक संगीत की विभिन्न विधाओं का जनसामान्य तक पहुँचाने का कार्य किया जाता है।

हालांकि ये सभी प्रयास सराहनीय है परन्तु फिर भी लोक संगीत के प्रोत्साहन हेतु ओर अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है क्योंकि पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव के कारण वर्तमान में स्थानीय और आदिवासी लोक संगीत अपने अस्तित्व को बचाए रखने हेतु संघर्षरत है।

"कन्हैया" जैसी अनेक आदिवासी लोकसंगीत की विधाऐं है जिनसे लोगों का परिचय तक नहीं हो पाया है। वर्तमान में यह लोक गायकी क्षेत्र विशेष में ही देखी जा सकती है और स्थानीय निवासियों को ही इसकी जानकारी होती है। फिर भी सभ्य समाज से यह आज भी कोसों दूर है जिसके अनेक कारण माने जा सकते हैं। जैसे –

- आदिवासियों का अशिक्षित होना।
- सभ्य समाज द्वारा तुच्छ समझा जाना।
- शिक्षित वर्ग द्वारा ऐसी लोक कलाओं के प्रति जागरूकता न होना।
- जनजातीय समुदायों का व्यक्तिगत स्वभाव, आदि।

अध्याय चतुर्थ

- **डांग प्रदेश की जनजातीय लोकगायकी : कन्हैया की वर्तमान स्थिति**

अध्याय चतुर्थ

डांग प्रदेश की जनजातीय लोक गायकी–कन्हैया की वर्तमान स्थिति

वैदिक ऋचाओं की तरह लोक संगीत या लोकगीत अत्यन्त प्राचीन एवं मानवीय संवेदनाओं के सहजतम उद्‌गार हैं। ये लेखनी द्वारा नहीं बल्कि लोक–जिव्हा का सहारा लेकर जनमानस से निःसृत होकर आज तक जीवित रहे हैं।

महात्मा गाँधी ने कहा था कि "लोकगीतों में धरती गाती है, पर्वत गाते हैं, नदियाँ गाती है, फसलें गाती हैं। उत्सव, मेले और अन्य अवसरों पर मधुर कंठो में लोक समूह लोक गीत गाते हैं।"

रामनरेश त्रिपाठी के शब्दों में, "जैसे कोई नदी किसी घोर अंधकारमयी गुफा से बहकर आती हो और किसी को उसके उद्‌गम का पता न हो, ठीक यही दशा लोकगीतों के बारे में विद्वान मनीषियों ने स्वीकारी है।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इस प्रभाव को स्वीकृति देते हुए कहते हैं, "जब जब शिष्टों का काव्य, पंडितों द्वारा बंधकर निश्चेष्ट और संस्कृति का होगा तब–तब उसे सजीव और चेतन प्रसार द्वारा देश के सामान्य जनता के बीच स्वच्छंद बहती हुई प्राकृतिक भावधारा से जीवन के तत्व ग्रहण करने से ही प्राप्त होगा।"

सामाजिकता को जीवित रखने के लिए लोकगीतों/लोक संस्कृतियों को सहेजा जाना बहुत जरूरी है। कहा जाता है कि जिस समाज में लोकगीत नहीं होते वहाँ पागलों की संख्या अधिक होती है।

लोक विधाओं का गढ़ राजस्थान लोकसंगीत के क्षेत्र में बहुत ही प्राचीन एवं समृद्ध रहा है। यह अपनी विशिष्ट संस्कृति और परम्पराओं के लिए प्रसिद्ध है। इसकी संस्कृति, परम्पराऐं तथा लोककलाऐं अनुपम धरोहर है। विभिन्न अवसरों पर गाए जाने वाले लोकगीत जहाँ आज भी इन परम्पराओं को संजोए हुए है वहीं ये इतिहास सुरक्षित रखने के प्रमुख साधन भी कहे जा सकते हैं।

लोकगीतों के महत्व को दर्शाते हुए टैसी टोरी ने लिखा है कि "लोकगीत मर्मस्पर्शी, भावना प्रधान एवं मधुर होते हैं। लोकगीत एक–एक भाव के सामने सम्पूर्ण संसार का साहित्य भी तुच्छ है।"

लोकगीत संस्कृति के दर्पण होते हैं जो अतीत के अंधकार में विलीन अनेक महत्वपूर्ण रहस्यों को उद्‌घाटित करते हैं। इनके माध्यम से तत्कालीन वेशभूषा, रहन–सहन, रीति–रिवाज, पर्वों व उत्सवों आदि की जानकारी जनसाधारण को प्राप्त होती है।

राजस्थान के जनजातीय या आदिवासियों में अपना प्रमुख स्थान रखने वाले मीणा जनजाति के लोकगीत स्वच्छन्द, नैसर्गिक वातावरण की देन है। इनमें शब्दों का नहीं भावों, तालों, लयों और स्वरों का विशेष महत्व होता है। इनके नैसर्गिक लोकसंगीत हो कृत्रिम एवं लाक्षणिक बन्धनों में नहीं बाँधा जा सकता है। इनका संगीत सहज, सरल और मौलिकता से युक्त है जो जातीय जीवन में रमा हुआ दिखाई देता है।

आदिवासी प्रकृति से तालमेल के साथ अपने लोकगीतों को सरस बना लेते हैं। कल्पना शक्ति सीमित होने के कारण इनके गीतों में ताल और लय की प्रधानता देखने को मिलती है। लय और ताल के साथ वाद्ययन्त्रों का प्रयोग माधुर्य को द्विगुणित कर देता है।

जनजातीय लोकगीतों के अध्ययन से जो सामान्य एवं मूलभूत विशेषताऐं गीतों में देखने को मिलती है उन्हें संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता हैं –

(1) सामान्य विशेषताऐं–

(क) वातावरण की प्रधानता

(ख) नैसर्गिक एवं उन्मुक्तता

(ग) रूढ़िगत अतिशयोक्ति

(घ) निरर्थक शब्दों का प्रयोग

(2) मूलभूत विशेषताऐं –

(क) प्रश्नोत्तरी शैली या प्रधानता

(ख) रूढ़ संख्याओं का प्रयोग

(ग) टेक एवं पुनरावृति

(घ) उच्च एवं तीव्र स्वर

(ङ) नाट्य एवं अभिनय तत्व का समावेश

(च) संगीतात्मकता (विशिष्ट गायन शैली)

(1) सामान्य विशेषताऐं–

(क) वातावरण की प्रधानता –

जनजाति के लोगों का सम्बन्ध प्रकृति और श्रम से, जल और मिट्टी से, भावों तथा अभावों से, सरलता और सहजता से, सीधा और गहरा, प्रत्यक्ष तथा अटूट है। अतः इनके लोकगीत पूरे उन्माद, उमंग और स्वच्छन्द भावावेग के साथ व्यक्त होते हैं।

इनके लोकगीतों में सर्वप्रथम संयुक्त परिवार, संयुक्त परिवार को बाँधने वाली रूढ़ि एवं परम्परा तथा विश्वास मुखरित होते हैं। पारिवारिक परिवेश की अभिव्यक्ति के उपरान्त कृषि, ऋतु, प्रकृति, पशु–पक्षी, पहाड़, नदियाँ आदि पात्र बनकर आते हैं। लोकजीवन की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक स्थितियाँ आदि भी मुखरित होती हुई देखी जा सकती है जो किसी न किसी रूप में इनके लोकगीतों में विद्यमान रहती है।

(ख) नैसर्गिक एवं उन्मुक्तता–

भावों की निश्च्छलता, व्यवहार की सहज उन्मुक्तता, मिट्टी की सौंधी सुगन्ध, प्रकृति की विविधता, अनेकरूपता तथा अन्तः एवं बाह्य की एकरूपता इस समुदाय की अपनी जातीय विशेषता रही है। ये सभी विशेषताएँ इनके लोकगीतों में सहज, सरल एवं स्वाभाविक रूप में दृष्टव्य हैं। जीवन की नैसर्गिक अभिव्यक्ति ही इनके लोकगीतों का प्राणतत्व है। मानो जीवन का प्रत्येक भाव इनकी लोकभूमि से पूर्ण उन्माद के साथ उन्मुक्त जलधारा की भाँति विविध रंग के छींटे बरसाता हुआ लोकमन की लोक–लहरों के साथ फूट पड़ता है। जनजाति के लोकगीतों में जीवन की, उनके भावों की नैसर्गिकता के साथ अभिव्यक्ति की भी नैसर्गिकता मिलती है जिसे इनकी भाषा एवं अभिव्यक्ति की पद्धति में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। आदिवासी जीवन का कोई भी पक्ष हो भावों की अभिव्यक्ति की नैसर्गिकता इनकी अनुपम थाती रही है।

(ग) रूढ़िगत अतिशयोक्ति –

रूढ़िगत अतिशयोक्ति लोकगीतों की सामान्य विशेषता है। जनजातीय लोकगीतों में यह सहज सुलभ है, जैसे – नरसी के माध्यम से आज भी भात के पहनावे के समय गाये जाने वाले गीतों मे समस्त गाँव की पहरावणी, सबके लिए वस्त्र और अन्य सामग्री के रूप में रूढ़िगत अतिश्योक्ति को इनके गीतों में स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है।

झूला झूलते समय बालिका नीम की डाली पर झूलती हुई जब चन्दन, पटरी, रेशम की डोर आदि गीत गाती है, तब वह रूढ़िगत अतिश्योक्ति मुखरित होती साफ देखी जा सकती है।

धार्मिक लोकगीतों में अंधविश्वास आदि के माध्यम से ये रूढ़ियाँ साफ–साफ दिखाई दे जाती है।

(घ) निरर्थक शब्दों का प्रयोग –

इनके लोकगीतों की यह विशिष्टता रही है कि इनमें किसी प्रकार का नियम या सिद्धान्त लागू नहीं होता, ये पूर्ण स्वतंत्र होते हैं।

जनजाति के लोकगीतों में 'लय' तथा 'तुक' की व्यवस्था के लिए गायक उस स्थान के लिए अर्थहीन शब्दों का प्रयोग करता है।

लोकसंगीत की रक्षा के लिए इन निरर्थक शब्दों का प्रयोग प्रारम्भ से ही किया जाता रहा है।

तीर्थो के गीत, मेलों के गीत (रसिया गीत) आदि में इन निरर्थक शब्दों का अधिक प्रयोग होता हुआ देखा जा सकता है। इसके पीछे के कारणों में प्रमुख गीतों के रचयिताओं के पास शब्दों का सीमित होना माना जा सकता है क्योंकि जब शब्द कम होते हैं और भाव अधिक होते हैं तब शाब्दिक कमी को पूरा करने के लिए निरर्थक शब्दों का प्रयोग कर लिया जाता है।

(2) मूलभूत विशेषताएँ –

जनजाति के लोकगीत अन्य लोकगीतों की अपेक्षा कुछ निजी विशेषताओं के कारण स्वयं का अलग अस्तित्व रखते हैं जिन्हें निम्न प्रकार देखा जा सकता है–

(क) प्रश्नोत्तर शैली की प्रधानता –

प्रश्नोत्तर शैली के माध्यम से भावों को सहज, सरल और स्वाभाविक रूप से व्यक्त किया जा सकता है। यह विधा हृदय को हृदय से जोड़ने का भी काम करती है। इसे अपनाने से जिज्ञासा, कोतूहल, आकर्षण, प्रेषण की तीव्रता का समावेश हो जाता है। यही कारण है कि इन लोकगीतों का प्रयोग रूढ़ हो जाता है। संस्कार के गीत हों या तीज–त्योहारों या फिर भावनाओं के गीत हो, उन सभी में प्रश्नोत्तर विधि का प्रयोग देखा जा सकता है।

उदाहरण–

i) कोण की झूले नवल भँवरिया ?
सावन की झूले नवल भँवरिया।
कोण की झूले दोऊ बहणा?
भादो की झूले दोऊ बहण्या।

(ख) रूढ़ संख्याओं का प्रयोग –

इनके लोकगीतों में संख्याओं का रूढ़ प्रयोग मिलता है जहाँ संख्याओं का प्रयोग होता है वहाँ वास्तविकता में गणितीय अंको या संख्याओं की कोई अर्थसत्ता नहीं होती तथा गणित की दृष्टि से भी उन संख्याओं का कोई यथातथ्य महत्व नहीं होता। यह प्रयोग मात्र रूढ़िगत होता है।

उदाहरण–

(i) पाँचो पीर रथ सूँ उतर्‌या,
खेर उड्‌या असमान।

(ii) के लख माता बाँझड़ी, के लख आय बाड़ा री माय?
नौ लख माता बाँझड़ी, दस लख आय बाड़ा री माय।

इस प्रकार परिगणन या असंख्यत्व का भाव प्रकट करने के लिए आसठ–बासठ, अत्तीस–बत्तीस, बावन–बीस इत्यादि संख्याओं का प्रयोग तुक बिठाने हेतु प्रयोग किया जाता है।

(ग) टेक एवं पुनरावृत्ति –

गीतों में ध्वनि माधुर्य के लिए पंक्ति या पंक्तियों का बार–बार विशिष्टतः दोहरान किया जाता है। प्रश्नोत्तरात्मक गायन प्रणाली और गीत का विस्तार एवं भाव व्यंजना को गति प्रदान करना भी पुनरावृत्ति के कारण ही इनके गीतों में दिखाई देता है। इसके प्रयोग से गीतों को बड़ी सुगमता से कंठस्त किया जा सकता है। इन लोक गीतों के रचना विधान में एक सुनिश्चित आधारभूत पंक्ति "टेक" का विशेष महत्व है जिनकी पुनरावृत्ति अनेक बार होती है।

उदाहरण–

बीरा के री जाज्यो पावणी
म्हारी होड़ी क आसिर–पासिर जौ अर चणां,
बे तो बिद ग्या लाम्बा–लाम्बा केस,
बीरा के री जाज्यों .....।
म्हारो बीरो रंदावे चॉवल घणां,
म्हारी बाट लपटा रो गास
बीरा के री जाज्यो.....।
म्हारो बीरो घाले री घी अर घणो,
म्हारो भावज अड़सी रो तेल
बीरा के री जाज्यो.....।

(घ) उच्च एवं तीव्र स्वर –

उच्च एवं तीव्र स्वर में गाए जाने की इन जनजातीय लोकगीतों की विशिष्टता रही है जिसको इनकी आदिवासियत से भी जोड़कर देखा जाता है। पुरूषों द्वारा गाए जाने वाले कन्हैया, रसिया, लांगुरिया, गोठ, बखाण, हैला ख्याल, तथा स्त्रियों द्वारा गाए जाने वाले सुड्‌डा, उच्छांटा, मेलागीत आदि में ये विशिष्टता स्पष्ट रूप से देखी जाती है। उच्चता एवं तीव्रता के

परिणाम स्वरूप इनके लोक गीतों में प्रयुक्त कठोर एवं नीरस शब्द भी सरस बन जाते हैं और इसी प्रकार इनके गीतों में ताल और लय का अद्‌भुत समन्वय अत्यधिक सुमधुर लगता है।

(ङ) नाट्य एवं अभिनय तत्व का समावेश –

सामान्य जन का संचित ज्ञान एवं अनुभूति का अनन्त सागर इनके लोकगीतों के रूप में स्पष्ट रूप से देखा जाता है।

लोकगीतों की अभिव्यक्ति अपने प्रारम्भिक रूप में मुखरित होकर, स्वरों के साथ भावों को प्रकट करने वाली विभिन्न मुद्राऐं एवं शारीरिक हाव–भावों का प्रकटीकरण इनके लाकगीातों में होता है। इन गीतों में भावों की अभिव्यक्ति के लिए शब्द–वाणी के साथ कायिक भंगिमाएँ भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

आदिवासी गायक अपने प्रायोजनों को सिद्ध करने के लिए संकेत प्रणाली का प्रयोग करता है जिससे लोकगीतों में अभिनय तत्वों का समावेश स्वतः ही हो जाता है। जनजाति के दांगलिक लोक गीतों में नाटकीय तथा अभिनय तत्वों की प्रधानता को बहुतायत देखा जा सकता है।

(च) संगीतात्मकता (विशिष्ट गायन शैली) –

लोकगीतों का प्राण उनका संगीत होता है। मीणा जनजाति के लोकगीतों की स्वच्छन्द नैसर्गिकता वातावरण की देन मानी जाती है। इनके लोक गीतों में कल्पना शक्ति सीमित होने के कारण 'लय' और 'ताल' की प्रधानता मिलती है। स्त्री–पुरूष सम्मिलित अथवा अलग–अलग सामूहिक रूप से मेलों, त्यौहारों व मांगलिक अवसरों पर नृत्य के साथ लोकगीत गाते हुए देखे जाते हैं जो स्वतः ही आनन्द विभोर कर देते हैं।

अतः स्पष्ट है कि ये लोग प्रकृति से तालमेल के साथ अपने लोकगीतों को सरस बना लेते हैं। कृत्रिम वाद्य यंत्रों में नौबत, चंग, घेरा, ढोल, चिमटा, मंजीरा, खरताल आदि का प्रमुखतः इनके लोक गीतों में प्रयोग को देखा जा सकता है। इनके लोकगीत अनुभूति की तीव्रता से परिपूर्ण होते हैं जिनमें नैसर्गिकता एवं लोकमार्धुय के दर्शन पग–पग पर होते हैं इनकी संस्कृति अपनी ग्राम्य अस्मिता के साथ, अभिव्यक्त होती हुई दिखाई देती है।

लोक साहित्य लोक हृदय की अभिव्यक्ति है जिसमें लोक–भावना–कामना आदि लोकगीतों के माध्यम से, कभी कथा–गाथा गायन के माध्यम से तो कभी अभिनयात्मक विधा के माध्यम से व्यक्त होती है।

लोक कथाऐं लोकजीवन एवं उनके विश्वासों की अनूठी अभिव्यक्ति का नाम है। लोककथाओं में उस लोकजीवन के सभी पक्ष सुरक्षित रहते हैं और ये उस समाज की परम्पराओं को सुदीर्घ बनाती है। इन्हें किसी शिल्प विशेष या कला विशेष की आवश्यकता नहीं पड़ती वे तो लोकजीवन में पलने वाले लोक विश्वासों से स्वतः प्रस्फुटित होती है। अन्य विधाओं की भाँति लोककथा भी लोकगीतों के माध्यम से मौखिक रूप से प्राप्त होने के कारण ही वक्ता के साथ भाषा और भाव दोनों में परिवर्तित होते रहते हैं परन्तु इनका मूलाधार लोकविश्वास ही रहता है।

लोक कथाऐं लोकजीवन की अभिव्यक्ति है। इनमें समस्त जीवन आलोकित होता है। जनमानस में आप बीती कहने एवं बीती सुनने की प्रबल उत्कंठा प्रारम्भ होती है। लोककथाओं के जन्म की मूल भी यही भावना होती है। जिस प्रकार रात्रि में अपने बच्चों को उनकी माताएँ लोक कथाऐं या कहानियाँ सुनाकर आनन्द प्रदान करती है तो श्रमसिक्त ग्रामवासी संध्या के बाद चौपाल पर कऊ (अलाव) के आस–पास बैठकर अनेक प्रकार की लोक कथाऐं या कहानियाँ सुनाकर और सुनकर दिल बहलाते हैं। ऐसे ही कुछ लोककथाओं को "कन्हैया" जैसी गायनशैलियों में आदिवासी प्रयोग करते रहे हैं। ये कथाऐं उपदेश प्रधान होती है तथा मौखिक रूप से पीढ़ी–दर–पीढ़ी यात्रा करती है। इनके जन्म और विकास की यात्रा मानव के विकास के साथ ही सम्पन्न होती है यही कारण है, कि इनमें लोक का संचित अनुभव व्यक्त होता है।

इन लोक कथाओं में उपदेश की प्रधानता होती है। लोककथाओं के महत्व का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि लोकजीवन में लोकगीतों के माध्यम से इन लोककथाओं का अत्यधिक महत्व होता है।

लोककथा लोकजीवन तथा उसके विश्वासों एवं भावनाओं की अभिव्यक्ति है अतः लोकजीवन की मूल प्रवृतियाँ ही लोककथाओं के मूलतत्व या उसकी विशेषताएँ बनकर सामने आती है। ये लोककथाएँ किसी भी प्रदेश या किसी भी जाति विशेष की क्यों न रही हों कुछ सामान्य विशेषताएँ या लक्षण उनमें प्रायः समान रूप से मिलते हैं जैसे–

- लोकसंस्कारों से सम्पृक्त
- ऐहिक एवं परलौकिक सुख की कामना
- सर्वजनहिताय
- कौतूहल प्रधान

- अलौकिकता से युक्त
- चमत्कार प्रवृत्ति
- शिक्षाप्रद
- भावगहनता
- देशकाल की सीमाओं से परे
- मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक तत्वों की प्रधानता
- प्रतीकात्मकता
- कल्पना की प्रधानता
- लोकजीवन, प्रकृति एवं पशु–पक्षियों की पात्रता
- हास्य, व्यंग्य का पुट
- प्रेम का उदात्त रूप
- सुखान्त

लोककथाएँ सहज, सरल एवं रूचिकर होने के साथ ही मनोरंजन, कौतूहल, विस्मय एवं अलौकिकता से युक्त प्रेम, त्याग, बलिदान, शौर्य, पराक्रम, शिक्षा आदि भावनाओं से ओत प्रोत होती है। इनका उद्देश्य आदर्शोन्मुखी यथार्थजन्य आनन्द की प्राप्ति, शिक्षा एवं मनोरंजन होता है।

जनजातीय लोककथा –

प्रकृति के अंचल मे पलने वाला यह जनजातीय जनजीवन शिक्षा एवं साधनों के अभाव में अंधविश्वासों तथा रूढियों से जकड़ा हुआ आज भी भाग्य के भरोसे अपना जीवन अभावों में ही जी रहा है। इनके जीवन के सभी सुख–दुःख, भाव–अभाव एवं सफलता–असफलता इन्हीं लोककथाओं के माध्यम से पीढ़ी–दर–पीढ़ी सुनाई जाती रही है।

यह भी कहा जा सकता है कि इन कथाओं के माध्यम से जनजाति के लोग अपनी सन्तानों को अपने लोकजीवन की शिक्षा, अपने आदर्शो एवं मूल्यों की थाती प्रदान करते हैं।

प्रत्येक जाति के धार्मिक विश्वासों में, आमोद–प्रमोद में कुछ जातिगत अन्तर भी होते हैं, जो उसे दूसरों से भिन्न करते हैं। मीणा जनजाति की ये भिन्नताएँ भी उनकी लोककथाओं में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। दिनभर के श्रम से थकित ये लोग सांयकाल के समय इन लोककथाओं के माध्यम से ज्ञान, नीति, धर्म, उपदेश एवं मनोरंजन की पूर्ति करते हैं।

इनके जनजीवन में प्रचलित लोककथाओं को विषय की दृष्टि से विशेषतः निम्नलिखित वर्गों में विभाजित करके देखा जा सकता है –

(i) धार्मिक एवं पौराणिक लोककथाएँ

(ii) जातिपरक लोककथाएँ

(iii) नीतिपरक लोककथाएँ

(iv) ऐतिहासिक लोककथाएँ

(v) हास्य एवं मनोरंजन प्रधान लोककथाएँ

इन लोककथाओं में प्रकृति एवं अलौकिक तत्वों के माध्यम से धार्मिक, नैतिक एवं जातीय शिक्षाएँ प्रदान की जाती है।

(i) धार्मिक एवं पौराणिक लोककथाएँ –

डॉ.गोविन्द रजनीश ने राजस्थान के पूर्वी अंचल में प्रचलित धार्मिक लोककथाओं को दो वर्गों में विभाजित किया है –

(क) सामान्य धार्मिक कथाएँ

(ख) व्रत–माहात्म्य सम्बन्धी कथाएँ

(क) सामान्य धार्मिक कथाएँ –

मीणा जनजाति में प्रचलित सामान्य धार्मिक कथाओं में मुख्यतः पौराणिक कथाएँ तथा धार्मिक विश्वासों पर आधारित कथाएँ मिलती है। पौराणिक कथाओं में समुद्र मंथन, ध्रुव की भक्ति आदि विविध अवतारों की कथाएँ आदि प्रचलित है। देव पात्रों में शिव और पार्वती की प्रधानता मिलती है जो विचरण करते हुए मृत्यु लोक का अवलोकन करते हैं और अपने भक्तों का कष्ट निवारण करते हैं। 'मोर ध्वज' तथा 'हरिशचन्द्र', 'राजा भर्तृहरि' आदि ऐतिहासिक पात्रों के माध्यम से भी भक्ति भावना की अभिव्यक्ति मिलती है। वहीं धार्मिक विश्वासों पर आधारित कथाओं में प्रचलित धार्मिक भावना, आस्था तथा उसके विश्वास सहज ही व्यक्त होते हैं। जाट, नाई, ब्राह्मण, बनिया, कुम्हार आदि पात्रों के माध्यम से धार्मिक आस्था तथा विश्वास अलौकिक घटनाओं के माध्यम से उनका भाग्यवाद तथा अंधविश्वास आदि की सहज अभिव्यक्ति मिलती है।

(ख) व्रत–माहात्म्य सम्बन्धी कथाएँ –

मीणा जनजाति में शिव चौदस, अनन्त चौदस, कार्तिक स्नान आदि का विशेष महत्व माना जाता है और इनसे सम्बन्धित व्रत कथाओं में लोकजीवन के सामाजिक पक्ष एवं धार्मिक विश्वासों की सुन्दर छवि दिखाई देती है। इन कथाओं में अगाध प्रेम की व्यंजना, आत्मकल्याण एवं सर्वकल्याण की भावना, पति या पुत्र की कामना तथा सौभाग्य प्राप्ति आदि की कामना मिलती है।

(ii) जाति परक लोककथाएँ –

जातीय गुण–अवगुण, विश्वास–अविश्वास, स्वभाव आदि का इनकी कथाओं में वर्ण्य विषय रहता है। विशेष रूप से जातीय संस्कार, स्वभाव, व्यापार आदि का भाव बिन्दु इनमें देखा जा सकता है। जाति परक या जाति–विश्वासों पर आधारित लोककथाएँ जातिगत या सामाजिक मूल्यों, रीति–रिवाजों आदि को आलोचना या हास–परिहास का विषय बनाकर व्यक्त करती है।

मीणा जनजाति में नाई, कोली, जाट, बणिया, ब्राह्मण, कुम्हार आदि जातियों से सम्बन्धित अनेक कथाएँ प्रचलित है। जिनके माध्यम से जातीय गुणों–अवगुणों के लक्षणों को जैसे – लोभ, लालच, चतुराई आदि की अभिव्यक्ति मिलती है।

(iii) नीति परक लोककथाएँ –

नीतिपरक कथाएँ वे शिक्षाप्रद कथाएँ हैं जिनके माध्यम से आदर्श मूल्य, रीति–नीति, लोक व्यवहार आदि का बोध कराया जाता है। ये कथाएँ जनजीवन का मार्गदर्शन करती है तथा नैतिक आचार–विचारों की स्थापना करती है, पाप–पुण्य, भला–बुरा, हानि–लाभ, उचित–अनुचित आदि की शिक्षा देती है। ये कथाएँ पूर्व स्थापित एवं पूर्ण स्थापित विश्वासों को लेकर चलती है जैसे – अन्त में सत्य की जीत होती है, पुण्य की जड़ सदा रहती है आदि।

राजस्थानी लोकजीवन में कृषि, पशु–पक्षी एवं विभिन्न मनुष्य पात्रों के माध्यम से अनेक नीतिपरक या शिक्षाप्रद कथाएँ प्रचलित हैं। "धूर्त स्याड़", "कलकलो अर काग", "जम्बू राजा का हिसाब", "गँवार बुद्धि" आदि कथाएँ हम इस जनजाति के जीवन में प्रचलित लोकविश्वास एवं लोकमान्यताओं के परिचय के साथ नीति की शिक्षा भी प्राप्त करते देख सकते हैं।

(iv) ऐतिहासिक लोककथाएँ –

मीणा जनजाति वीर जातियों में से एक रही है। पराक्रम एवं परिश्रम इसका जातीय स्वभाव रहा है। दुर्भाग्यवश इस जाति का प्राचीन इतिहास नष्टप्रायः है। अतः इनकी ऐतिहासिक लोककथाओं में जातीय वीर पुरूषों का वर्णन नहीं के बराबर है किन्तु समय–समय पर जो

लोकनायक उत्पन्न हुए हैं वे लोककथाओं के माध्यम से आज भी बहुश्रुत हैं। मीणा जनजाति में अनके लोकनायकों के जीवन चरित्र से सम्बन्धित अनेक घटनाएँ लोककथाओं के रूप मे आज भी प्रचलन मे देखी जाती है।

(v) हास्य एवं मनोरंजन प्रधान कथाएँ –

लोककथा में अन्य तत्वों के साथ–साथ हास्य और व्यंग्य का पुट भी विद्यमान रहता है अनेक कथाएँ तो विशुद्ध रूप से हास्य और मनोरंजन के लिए प्रचलित होती हैं।

श्रमसाध्य, कठोर, वास्तविक जीवन को जीने के लिए या अभावों के संसार में अपने आप को जीवित बनाये रखने के लिए, जीवन की उमंग को बचाये रखने के लिए हास्य परमावश्यक है। यही कारण है कि ग्रामीण जनता नगरीय लोगों की अपेक्षा अधिक हास्यप्रिय होती है।

मीणा जनजाति में हास्य प्रधान अनेक कथाएँ प्रचलित हैं जिनका उद्देश्य शुद्ध मनोरंजन तथा उसके साथ कोई सूझबूझ की बात कहना होता है। इन कथाओं में हास्य या व्यंग्य क्यों न भरा हो उसके साथ कोई न कोई सूझबूझ की बात भी अवश्य निहित होती है जिनमें पात्रों को आधार बनाकर हास्य तथा मनोरंजन का उद्देश्य पूरा किया जाता है। इन कथाओं को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है –

(क) बड़ी कथाएँ

(ख) छोटी कथाएँ

बड़ी कथाओं में "बणिया अर चोर", "रिमझिम अर राजकुमार", डाकन अर डोकरी", "डोकरी का चरावा अर मूंसा", "स्याड़ और मोर" आदि अनके कथाएँ प्रचलन में देखी जाती है वहीं छोटी कथाओं में "स्याड़ की सीख", "किसान अर काग", "भैंस अर केड्डा", "धुन्नक छेड़ी" आदि लोकप्रचलित कथाएँ हैं।

उपरोक्त शीर्षकों से स्पष्ट होता है कि इनके पात्रों के माध्यम से हास्य, मनोरंजन के साथ–साथ कोई न कोई सीख भी दी जाती है अतः ये कथाएँ मनोरंजन के साथ–साथ शिक्षाप्रद भी होती हैं।

मीणाओं का जनजीवन प्रकृति का सहचर, विश्वासों का अनुचर तथा अभावों का वाहक रहा हैं। ये लोककथाएँ, लोकगीतों के माध्यम से इनके शुष्क जीवन को मनोरंजन प्रदान करती है। साथ ही धार्मिक, सामाजिक आर्थिक, नैतिक सीख भी देती है। इन लोककथाओं का लोकगीतों के माध्यम से इनके जनजीवन और संस्कृति के वास्तविक स्वरूप को देखा–परखा जा सकता है।

कन्हैया का स्वरूप –

"कन्हैया" का स्वरूप समझने के लिए मीणा जनजाति के लोकजीवन को समझना अतिआवश्यक है। लोकगीतों का इनके जीवन में अत्यधिक महत्व रहा है लोकजीवन के प्रत्येक पक्ष के साथ इनका जुड़ाव देखा जा सकता है। इनके गीत दो प्रकार से उपलब्ध होते हैं जिसमें कथा या आख्यानों का अभाव रहता है ये मात्र गेय होते हैं वहीं द्वितीय गीत वे हैं जिनमें गेयता के साथ लम्बा कथानक भी होता है।

अंग्रेजी भाषा में गीतों के प्रथम भेद के लिए LYRICS (प्रगीत) और द्वितीय भेद के लिए BALLAD (सादा गाना) शब्दों का प्रयोग मिलता है जो इनकी स्पष्ट व्याख्या करते हैं।

लोककथाओं को लोकगायन के माध्यम से लोकनाट्यों का प्रयोग करते हुए प्रस्तुत करने की विशिष्ट शैली "कन्हैया" में देखी जाती है इस गायन शैली में मुख्य रूप से प्रस्तुत होने वाले तत्वों में

(i) लोकप्रसिद्ध कथाएँ
(ii) संवाद
(iii) गीत–संगीत
(iv) नृत्य
(v) अभिनय
(vi) वेशभूषा
(vii) मनोरंजन

आदि सम्मिलित है। उक्त तत्वों के योग से ही लोकप्रसिद्ध कथाएँ लोकनाट्य के रूप में प्रस्तुत होते हैं। लोकनाट्यों का यह स्त्रोत सामूहिक जीवन से बनता, पनपता और विकसित होता हुआ अपनी रूढ़ परम्पराओं और प्रवृत्तियों को सुरक्षित रखता है और बाहरी प्रभावों को अपने अनुसार ढ़ालता हुआ उसे पचा लेता है।

यही कारण है कि "कन्हैया" जनजातीय गायनशैली होते हुए भी लोकनाट्यों के गुणों को अपनाए हुए है।

"कन्हैया" लोकनाट्यों में शामिल किए जाने के अनेक कारण हो सकते हैं जिनमें प्रमुख कारण यह माना जा सकता है कि इसके स्वरूप में अत्यधिक परिवर्तन होते आए हैं, जिन्हें लोकगायकों से प्राप्त जानकारी के आधर पर समझना चाहिए।

"कन्हैया" (कनैया) सामूहिक गायन शैली है जो विशिष्टतः जनजाति द्वारा ही गायी जाती है। वर्तमान में यह राजस्थान के सवाई माधोपुर, करौली, टोंक, भरतपुर, दौसा, जयपुर आदि

जिलों में मुख्य रूप से गायी जाती है आंचलिक भाषा के अनुसार 'कहन' ख्याल में की जाती है और इसी आधार पर "कनैया" का स्वरूप बनकर हमारे समक्ष प्रस्तुत है जिसे "कन्हैया" के रूप में पहचान मिली है।

"कन्हैया" दंगलों के रूप में आयोजित किया जाता है इन दंगलों के विषय लोकप्रिय आख्यान होते हैं विशेषकर रामायण, महाभारत एवं पौराणिक कथाएँ इनका आधार बनती है। प्रारम्भ में कृष्ण लीलाओं से सम्बन्धित पौराणिक आख्यान ही "कन्हैया" के विषय होते थे सम्भवतः "कन्हैया" नामकरण भी इस बात का द्योतक है।

अस्सी के दशक में "कन्हैया" के लोकगीतों में गीत एवं नाट्य दोनों के ही तत्व मिलते थे। अभिनय का योग होने के कारण इसे लोकगीतों में न रखकर लोकनाट्यों में सम्मिलित किया गया परन्तु 21वीं सदी में अर्थात् वर्तमान समय में इसके स्वरूप में परिवर्तन हो चुका है और यह केवल मात्र लोकगायकी के प्रकार के रूप में विकसित हो रही है।

इसके वर्तमान स्वरूप को निम्न तत्वों के माध्यम से विश्लेषित किया जा सकता है –

(i) वस्तु
(ii) गायन एवं वाद्ययंत्र
(iii) प्रस्तुतीकरण
(iv) उद्देश्य

(i) वस्तु –

अस्सी के दशक तक "कन्हैया" के लोकगायन का कथ्य या विषय लोकप्रचलित धार्मिक एवं पौराणिक आख्यानों पर आधारित होता था और केवल श्री कृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित कथाओं को इसमे गाया जाता था परन्तु धीरे–धीरे इनमें अन्य पौराणिक एवं धार्मिक आख्यानों को भी सम्मिलित किया जाने लगा। जिनमें रामायण, महाभारत आदि के मार्मिक एवं लोकप्रिय स्थल प्रमुख है जिन्हें लोकमानस द्वारा गीतबद्ध करके लोकरंजन हेतु गाया जाने लगा है।

(ii) गायन एवं वाद्ययंत्र –

"कन्हैया" में प्रमुखतः चौपाई, सवैया आदि छन्दों की प्रधानता देखी जाती है जिन्हें विशिष्ट धुनों के साथ ताल व लय के मिश्रण से प्रस्तुत किया जाता है। गायन के समय हाथों से झाला (इशारा) देना, आगे–पीछे हटकर, उछल–कूद करते हुए इसका गायन किया जाता है। गीत की लय को बनाए रखने हेतु मेडीया (प्रमुख गायक) प्रारम्भ से अन्त तक तुकबन्दी करते हुए समूह के साथ गायन करते हैं। इसके गायन के लिए नौबत, घेरा, ढप, झांझ, मंजीरा जैसे वाद्ययंत्रों का प्रमुख रूप से प्रयोग किया जाता है।

(iii) प्रस्तुतीकरण –

अस्सी के दशक तक इसके गायन में गीत को प्रमुखतः निम्न भागों में विभक्त किया जाता था –

(क) उठाण

(ख) तर्ज गाड़ी

(ग) बोल

(घ) दुबोला

(ङ) बढ़ावरा

(च) चौपाई

(छ) डट्टा

जिसे इस गीत के माध्यम से समझा जा सकता है –

(कथा – श्री कृष्ण का गोवर्धन धारण)

उठाण –

बृज चौरासी कोस में चार गाँव निजधाम।

बिन्दावन मदपुरी स प्यारे बरसानो नन्दगाम।।

तर्ज गाड़ी –

1. जसमति जी रो प्यारो जी बनो भोत गजब खंड खेला रंग बरसेगो।

2. मथुरा में अर बिन्दावन में घर–घर दिए तो बुलाये, रंग बरसेगो।

3. ग्वाल बाल बुलवाये मेरे स्वामी तेने का रचना रच दई है, रंग बरसेगो।

बोल –

अरे ऐसी लग रही है गासी, बुलाये लोग ब्रज के वासी मथुरा में जनम लियो तो मैंने जब ते मेरे बाके ओ.....

मेरे बाके पर गए बैर जबई ते

प्रेम घटा जल बरसन लागे इन्द्र धरई ते।

बोल –

इन्द्र पूजा छोड़ ब्रज में गोबर धन पुजवायो रे।

सुन इन्द्र मेरी बात आज तेरो ई नाम घटायो रे।।

उठाण –

ओ.... मत अटके इन्दर उबरते।

डूब–डूब करदऊँगो मेघालय के जलते।

बोड़ दऊगो विस्न समुद्र के जल ते।।

दुबोला –

अरे बीरे गोरे हाथ रचादई तो नथली झोका खा रही है।

अरे बीरे करि करि लडुआ भरि भरि डलिया गोबरधन पे जा रही है।

करि–करि लडुआ.....।

चौपाई–

बोले बोले वन में मोर तो पपईया।

गोबरधन पे बोले बाने भोत उठैया।।

बढ़ावरा–

विरज पें झुक आये बदला, झुक आये बदला,

अररर बीत रही घनघोर बिरज पे झुक आये बदला।।

उठाण–

ओ... कारी कारी बंधती आये हो बदरिया,

ओ... धेला गई बिरज की दुनिया।

दुबोला–

अरे बीरे छोटी–मोटी बूंद पड़े मेरे स्वामी अब

अरे दिन की रात बना ढ़ईय, छोटी–मोटी...।

अरे धरती क लग–लग जाय बैरी बदला,

दिन की रात बना दईय।

चौपाई–

बिरखा बरस रही है भारी, पूजा हो रही बाकी न्यारी।

ओ सांवलिया सिरदार बन्सी लागे तेरी प्यारी।।

बोल–

ओ परवान तो उठा लियो कर पे,

चक्कर तान दियो गोबरधन पे।

डट्टा–

अरे बीरे करि करि लडुआ भरि–भरि डल्या,

रचि रचि भोग लगावे तो...।

सात कोस की दे परकम्मा तो

नव नव सीस नमावे तो।

डट्टा–

बंशी को बजैया सांवरो तो कैसी धुन गाय रियो, मुरली प्यारी लागे तो।

ओ बंशी तेने बजा दई मेरे प्यारे, क बिरज पै उड़रिये जै जै कर रे।

वर्तमान में इन गीतों का स्वरूप बदल गया है और अब इन गीतों को निम्न भागों में विभक्त किया जाता है–

(क) भवानी

(ख) ठाढ़ी झड़ी

(ग) बैठक

(घ) बोल

(1) चाँदा

(2) भींत

(ङ) पद

(च) दुबेला

(छ) झोला

(ज) झड़ी

भवानी–

"कन्हैया" गीत को प्रारम्भ करने से पूर्व सभी गायक सम्मिलित रूप से अपने ईष्ट देवों का स्मरण करते हैं और तत्पश्चात् "कन्हैया का" गायन आरम्भ करते हैं। ये जनजातीय लोग इसे "भवानी मनाना" कहते हैं।

ठाढ़ी झड़ी–

गीत के इस भाग में दल के सभी सदस्य एक–दूसरे के हाथ में हाथ लेकर (पकड़कर) एक साथ खड़े होकर कथा को छोटे रूप में गाकर बताते हैं। इसके माध्यम से जो "कन्हैया" (कही जाने वाली कथा) होता है उसका सामान्य परिचय श्रोताओं को करवाया जाता है।

बैठक–

ठाढ़ी झड़ी के पश्चात् सम्पूर्ण दल अपने नियत स्थान पर एक गोलाकार अवस्था में बैठ जाते हैं। यहाँ सम्पूर्ण दल दो भागों में विभक्त रहता हैं जिसे प्रथम चाँदा तथा द्वितीय चाँदा भींत कहकर सम्बोधित किया जाता है।

बोल–

जब दो भागों में दल का विभक्तिकरण हो जाता है तब चाँदा तथा भींत दोनों समूह बारी–बारी से गायन आरम्भ करते हैं।

चाँदा–

इनकी बैठने की अवस्था आमने–सामने की होती है।

भींत–

ये एक सीधी पंक्ति के रूप में बैठते हैं। स्थानीय भाषा में भींत से तात्पर्य दीवार से लिया जाता है अतः सामान्य रूप से दल को बैठा हुआ देखने पर ये दीवार के रूप में दिखाई पड़ता है। वहीं चाँदा से चन्द्रमा का अर्थ समझा जाता है और गोल स्वरूप में इनकी बैठक स्थिति दिखाई देने के कारण ही इसका नामकरण चाँदा हुआ है।

पद–

इसको सम्पूर्ण दल एक साथ गाता है क्योंकि यह छन्दों पर आधारित रचनाऐं होती है इसलिए मेड़िया (मुख्य गायक) के द्वारा बोल बताकर दल को गीत आरम्भ का संकेत प्रदान करता है।

दुबेला–

इसका गायन दोनों दल बारी–बारी से करते हैं जिससे गीत में प्रतियोगिता का भाव परिलक्षित होने लगता है। इसी कारण इन्हें 'पद दंगल' के नाम से भी पहचान मिली है।

झोला–

गीत के आरम्भ से अब तक जो राग/धुन थी उसका परिवर्तन "झोला" के माध्यम से किया जाता है। जैसा कि इसके नाम से ही ज्ञात होता है कि झोला अर्थात् झूले के समान। इसका धीमी गति से गायन किया जाता है।

झड़ी–

गीत के अन्तिम भाग के रूप में इसे समझा जा सकता है। सम्पूर्ण दल द्रुत लय में एक साथ इसका गायन करता है।

उपरोक्त भागों के माध्यम से 'डट्टा' की रचना होती है। "कन्हैया" में कथा के अनुसार 5 से 8 या 10 तक 'डट्टे' गाए जाते हैं।

"कन्हैया" एक सामूहिक गायकी है इसलिए 50–60 व्यक्तियों का समूह एक साथ इसका गायन करते देखा जाता है। प्रमुख रूप से यह लय तथा ताल प्रधान गायकी है जिसमें तीनों लय 1) विलम्बित लय, 2) मध्य लय, 3)द्रुत लय, का सम्मिलित रूप दिखाई देता है। "कन्हैया" का दंगल के रूप में आयोजन किया जाता है जिसके लिए पुरूषों द्वारा जो वस्त्र पहने जाते हैं उनमें सफेद धोती, कुर्त्ता पहनना अनिवार्य होता है।

अध्याय पंचम्

- राजस्थान प्रदेश की अन्य लोकगायकीयों से तुलनात्मक विवरण

अध्याय पंचम

राजस्थान प्रदेश की अन्य लोकगायकीयों से तुलनात्मक विवरण

लोकगीतों का वर्गीकरण करते समय विद्वानों में कहीं विषय–वस्तु को आधार माना है, कहीं शिल्प और शैली को, कहीं प्रदेश को तो कहीं बोली विशेष को ध्यान में रखकर गीतों का वर्णन किया। जिन विद्वानों ने लोकगीतों का वर्गीकरण किया है उनमें वर्ण्य–विषय की विविधता, शैली की अनेकरूपता तथा रूप अधिक्य की वजह से निश्चित भेद–उपभेद बताना अत्यधिक कठिन कार्य है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि जो साहित्यिक रूप विषय, प्रवृत्ति तथा शिल्प को लेकर सीमित हो, उसे वर्गीकृत करना सरल हो जाता है।

इतना होने के बावजूद प्रारम्भ से लेकर वर्तमान तक लोकगीतों के अध्ययन कार्य से जुड़े अनेक अध्येताओं के लोक–विधा के वर्गीकरण का ढंग तथा वर्गीकरण करने वाले विद्वानों के वर्गीकरण एक–दूसरे से पृथक हैं।

डॉ. सत्येन्द्र ने लोकगीतों का वर्गीकरण क्षेत्र की दृष्टि से निम्न प्रकार किया है–

1) नगर के लोकगीत –

i) आनुष्ठानिक गीत

ii) सामूहिक मनोरंजन के गीत

iii) ग्रमानुकरण के गीत

2) ग्राम के लोकगीत –

i) आनुष्ठानिक गीत

ii) सामान्य गीत

a) उद्योग सम्पर्कित

b) तिथिवारक

c) मनोरंजनार्थ

3) जंगल के लोकगीत –

i) उद्योग सम्पर्कित

ii) आनुष्ठानिक

iii) तिथिवार

लोकगीतों के वर्गीकरण की पद्धति –

लोक में प्रचलित असंख्य गीतों में कई गीत विशेष, संस्कारों के अवसरों पर गाये जाते हैं, तो कुछ गीत ऋतुओं तथा महीनों से जुड़े हैं, कई गीतों का सम्बन्ध विभिन्न त्यौहारों, उत्सवों एवं व्रतों से हैं। साथ ही विविध कार्य करते समय भी कुछ गीत गाये जाते हैं। कुल मिलाकर लोकगीतों को गाने के अवसर अनेक होते हैं। इन गीतों में पाए जाने वाले विषय भी विविध होते हैं। शैली एवं शिल्प में भी वैविध्य मिलता है। रस की दृष्टि से भी इनके कई भेद होते हैं। विभिन्न विद्वानों ने लोकगीतों के वर्गीकरण की पद्धति में जिन आधारों पर इन गीतों का वर्गीकरण किया है उन्हें इस प्रकार समझा जा सकता है –

1) संस्कारों की दृष्टि से
2) रसानुभूति की प्रणाली से
3) ऋतुओं एवं व्रतों के क्रम से
4) विभिन्न जातियों के प्रकार से
5) क्रिया–गीत की दृष्टि से

संस्कार हमारे धार्मिक जीवन का हिस्सा है इन संस्कारों पर जो–जो विधि–विधान सम्पन्न होते हैं, उनके साथ गीत गाने की भी प्रथा रही है, इन विविध संस्कारों को सम्पादित करते समय लोकगीत गाए जाते हैं जिनमें पुत्र–जन्म संस्कार, मुन्डन संस्कार, विवाह, मृत्यु अर्थात् जीवन के प्रत्येक पक्ष से सम्बन्धित संस्कारों से जुड़े हुए अनेक गीत प्रचलित है।

काव्यशास्त्र की परम्परा में इस–सि़द्धान्त का सबसे ज्यादा महत्व मिलता है। रस को काव्य की आत्मा कहा गया है। यह स्थिति सिर्फ शिष्ट काव्य या शिष्ट साहित्य में ही नहीं बल्कि लोकगीतों में भी पाई जाती है, शायद ही ऐसा कोई रस हो, जिससे जुड़ा लोकगीत न हो।

प्रकृति का हमारे जीवन में बहुत महत्व है। प्राचीनकाल से लेकर आज तक एक प्रमुख विषय बनी हुई है। लोकगीतों में कुछ गीत ऋतुओं से जुड़े हैं। बारहमासा, चैता–चैती, बसंत के गीत, कजली तीज आदि इनके उदाहरण है। हमारे धार्मिक जीवन में त्यौहार एवं पर्वो का बहुत महत्व है। समय–समय पर हम धार्मिक भावना से कई व्रत करते रहे हैं। इन व्रतों के समय, पूजा–पाठ के साथ गीत भी गाए जाते हैं।

राजस्थान की लोक गायन शैलियाँ

सम्पूर्ण राजस्थान में मुख्यतः निम्नलिखित गायन शैलियाँ प्रचलित है–

1) माँड गायिकी

2) मांगणियार गायिकी

3) लंगा गायिकी

4) तालबंदी गायिकी

चित्र सं. 5.1 : 'मांगणियार गायिकी' का प्रस्तुतीकरण करते लोक कलाकार

इन गायन शैलियों की स्थिति अलग–अलग क्षेत्रों से सम्बन्धित है। राजस्थान के पश्चिमी मरूस्थलीय सीमावर्ती क्षेत्रों बाड़मेर, जैसलमेर, जोधपुर, आदि में मांगणियार गायिकी का प्रचलन देखा जाता है जो "मांगणियार" जाति विशिष्ट के द्वारा ही गायी जाने वाली लोक गायन शैली है।

चित्र सं. 5.2 : 'मांड गायिकी' का प्रस्तुतीकरण करते लोक कलाकार

चित्र सं. 5.3 : 'लंगा गायिकी' का प्रस्तुतीकरण करते लोक कलाकार

जैसलमेर क्षेत्र में राजस्थान के प्रमुख माने जाने वाले 'राग मांड' की 'मांड गायिकी' अत्यधिक प्रसिद्ध रही है इसके अतिरिक्त पश्चिमी क्षेत्र में पायी जाने वाली मुस्लिम जाति 'लंगा' के द्वारा 'लंगा गायिकी' का अत्यधिक प्रचार–प्रसार देखने को मिलता है। इनके साथ प्रमुख रूप से 'सारंगी' व 'कमायचा' जैसे वाद्ययंत्रों का प्रमुखतया प्रयोग किया जाता है।

तालबंदी गायन शैली का सम्बन्ध लोकगायन की शास्त्रीय परम्परा से रहा है जो राजस्थान के पूर्वी अंचल के भरतपुर, धौलपुर, करौली, सवाई माधोपुर में विशेष रूप से पाई जाती है।[22]

चित्र सं. 5.4 : 'ताल बन्दी गायिकी' के अन्तर्गत 'कन्हैया' का प्रस्तुतीकरण करते जनजातीय लोक कलाकार

[22] कान्ति जैन, "राजस्थान मे संगीत, लोकनृत्य एवं लोकनाट्य" पृ.158

"राजस्थान के लोकगीत"

सम्पूर्ण राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक लोक गीत पाए जाते हैं, जिनका विवरण विद्वानों ने जीवन के सम्पूर्ण पक्षों से सम्बन्धित होने के कारण इस प्रकार दिया है–

- **जच्चा/होलर –**

परिवार में पुत्र या बालक के जन्म के अवसर पर स्त्रियों द्वारा गाए जाने वाले गीत 'जच्चा/होलक' कहे जाते हैं। जिसमें सामान्यतः गर्भिणी की प्रशंसा, वंशवृद्धि का उल्लास, होने वाले शिशु के लिए मंगलकामना की जाती है।

उदाहरण –

"होलर जाया ने हुई बधाईं,

ये म्हारा वंश बढ़ायो रे अलबेली जच्चा।

रंग महल विच जच्चा होलर जायो ये पिलारी मोज ये,

प्यारी लागे कुल बहु ओ ललना।"

- **परणेत –**

परणेत शब्द 'परिणय' से बना है जिसका अर्थ 'विवाह' से होता है विवाह के समय किए जाने वाले विभिन्न रस्मों जैसे विनायक, चाक पूजन, हड्दहाथ, सवेरा, घोड़ी, निकासी आदि से सम्बन्धित गीत गाए जाते हैं।

उदाहरण–

i) **गणेश (विनायक) स्थापना का गीत**

"एक सौ पान सुपारी ड्योढ़ सै,

म्हारो फलसड़ो कुण खुड़काइयो।

छोटो सो बिंदायक डगमग डोले,

च्यार लाडू खाबा ने।"

ii) **चाक पूजन का गीत**

"माथै मैं महमद पहरल्यो कुम्हारी,

तो रखड़ी की छवि न्यारी,

ए रायजादी ऐ कुम्हारी।"

iii) **दुल्हा/दुल्हन का गीत**

"बना क बनड़ी, फेरा में झगड़ी।

थे ल्यायां क्यों ना जी, सोना री तगड़ी।।"

iv) **भात/मायरा का गीत**

"सात सुपारी मान रो बिड़लो भतियॉ नै रै वीरा

नूतण जाय, राजिन साथ लियो।"

"गोटा को दावण मेरी सासू ताणी लाजे रे

थे तो धन जी भैणां रो मान बड़ो करयो।"

v) **घोड़ी का गीत**

"बनड़ो उमायो ए बनी थारै कारणें,

जोड़ी की उमायो ए बड़ गौतम थारै रूप में।"

vi) **बारात का डेरा देखने जाने के गीत**

"सईयो मोरी रे आयौड़ा जे रे जलालो देश में

चमक्यारे च्यारे देश...।"

- **ओल्यूँ गीत –**

ओल्यूँ शब्द का अर्थ 'याद' होता है। वधू की विदाई के समय ये गीत गाए जाते हैं।

उदा–

"अेकरिये करला थारा, मारू जी पाछानी मोड़ राजिंदा ढोला,

ओल्यूँ घणी आवै म्हारा बाबो सा री।"

- **बधावा गीत –**

इसे 'मंगलगान' भी कहते हैं। किसी भी शुभ कार्य (गृह प्रवेश/नांगल/ शादी/नया व्यवसाय) आदि सम्पन्न होता है, तब 'बधावा गीत' गाए जाते हैं। परिवार के प्रमुख सदस्यों के आदरपूर्वक नाम लेकर इन्हें गाया जाता है।

- **मरांसिये गीत –**

किसी व्यक्ति की मृत्यु पर गाये जाने वाले हृदयाभेदी मार्मिक लोकगीत गाए जाते हैं। स्त्रियाँ रोने के स्वर में मरने वाले व्यक्ति से सम्बन्धित विशेषताओं का वर्णन करते हुए इन्हें गाती है।

- **सीठणे गीत –**

सीठने का अर्थ "गाली" होता है अतः इसे "गाली गीत" भी कहते हैं। ये विशेषतः विवाह समारोह, खुशी व आत्मानंद के लिए हँसी–ठिठोली से भरे इन गाली गीतों को गाया जाता है।

- **हमसीढ़ो –**

यह उत्तरी मेवाड़ के भीलों में प्रसिद्ध लोकगीत है जिसे स्त्री व पुरूष मिलकर गाते हैं।

- **पवाड़े गीत –**

महापुरूषों की वीरता के विशेषताओं को इन गीतों के माध्यम से गाया जाता है। इनका प्रचलन राजपूतों में अधिक पाया जाता है।

- **मूमल गीत –**

ये श्रृंगारिक गीत है जिसमें राजकुमारी मूमल का नख–शिख वर्णन किया जाता है।

- **हींडो या हिंडोल्या –**

सावन माह में महिलाओं द्वारा झूला झूलते समय इन लोकगीतों का गायन किया जाता है। इनका प्रचलन नवविवाहित एवं कुँवारी कन्याओं में अधिक है।

- **जीरा गीत –**

कृषक पत्नी अपने पति से जीरे की खेती में आने वाली कठिनाईयों को इन गीतों के माध्यम से अनुरोध किया जाना देखा जाता है।

उदाहरण –

"यो जीरो जीव रो बैरी रे, मत बाओ म्हारा परण्या जीरो।"

- **हरजस गीत –**

राम व कृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित लोकगीत 'हरजस' कहलाता है। जैसा कि नाम से प्रतीत होता है – हर का अर्थ हरि तथा जस का अर्थ जपना अर्थात् हरि को जपना।

- **कामण गीत –**

जादू–टोने–टोटकों से बचाने हेतु ये लोकगीत गाए जाते हैं। इसमें स्त्रियाँ अपने पति की दीर्घ आयु की कामना करती है।

- **रातीजगा गीत –**

विवाह, पुत्र जन्मोत्सव, मुंडन आदि शुभ अवसरों पर अथवा मनौती मनाने पर रात भर जाग कर देवी–देवताओं को प्रसन्न करने के उद्देश्य से ये गीत गाए जाते हैं।

- **पपैयो गीत –**

पपीहा (वर्षा ऋतु में बोलने दाम्पत्य प्रेम के आदर्शो को दर्शाने वाला) पक्षी, राज्य के कई भागों में ये गीत गाया जाता है। इसमें विरहणी के प्रेमोदगारों को अभिव्यक्त कर प्रेयसी अपने पति को बुलाने के लिए गाती है।

- **तेजा गीत –**

किसानों का यह प्रेरक गीत हैं, जो खेती शुरू करते समय लोकदेवता तेजाजी की भक्ति में गाया जाता है व वर्षा के आव्हान की कामना इन गीतों के द्वारा की जाती है।

उपरोक्त लोकगीतों के अतिरिक्त राजस्थान में क्षेत्र विशेष में कुछ लोकगीत विशिष्ट रूप से गाए जाते हैं, जिन्हें इस प्रकार समझा जा सकता है–

- **मूमल –** जैसलमेर में गाया जाने वाला श्रृंगारिक लोकगीत।
- **ढोलामारू –** सिरोही में गाया जानेवाला लोकगीत।
- **गोरबंद –** ऊँट के गले का आभूषण गोरबंद पर मरूस्थलीय व शेखावाटी क्षेत्रों में लोकप्रिय 'गोरबंद' लोक गीत प्रचलित है।
- **रसिया –** ब्रज, भरतपुर, धौलपुर, आदि क्षेत्रों में गाए जाने वाले लोकगीत।
- **लावणी –** श्रृंगारिक व भक्ति संबंधी लोकगीत।
- **सुपणा –** विरहणी के स्वपन से सम्बन्धित लोकगीत।
- **लांगुरिया –** करौली क्षेत्र की कुल देवी "कैला देवी" की आराधना में गाए जाने वाले लोकगीत।
- **बीछूड़ो –** हाड़ौती क्षेत्र का एक लोकप्रिय लोकगीत हैं।
- **घुड़ला –** मारवाड़ क्षेत्र में होली के बाद घुड़ला त्यौहार के अवसर पर कन्याओं द्वारा गाया जाने वाला लोकगीत।

- **कलाली** – यह वीर रस प्रधान लोकगीत है।
- **मोरिया** – इस लोकगीत में ऐसी कन्या की व्यथा गायी जाती है जिसका संबंध तय हो चुका है लेकिन विवाह में देरी है।
- **चिरमी** – इस लोकगीत में चिरमी के पौधे को सम्बोधित कर बाल ग्राम वधू द्वारा अपने भाई व पिता की प्रतीक्षा के समय की मनोदशा व्यक्त होती है।
- **काजलियो गीत** – 16 श्रृंगारों में से एक है "काजल"। विवाह में निकासी के समय वर की आँखों में भाभी काजल डालती है और औरतों के द्वारा ये गीत इसी रीत के लिए गाए जाते हैं।

उदाहरण –

"काजल भरियो कूंपलो कोई
धर्यो पलंग अध बीच कोरो काजलियो।"

- **दारूड़ी गीत** – दारूड़ी का शाब्दिक अर्थ शराब होता है। सामंतो की महिलाओं की महफिलों में यह लोकगीत गाया जाता है जो उनके मद्यपीय जीवन को व्यक्त करता है।

उदा–

'दारूड़ी दारवॉ री म्हारै भंवर ने थोड़ी–थोड़ी दीजियो ए'

- **कागा गीत** – नायिका कौए को संबोधित करते हुए अपने प्रियतम के जाने का शगुन मनाती है और कौए को प्रलोभन देकर उड़ने को कहती है।
- **गणगौर गीत** – गणगौर पर्व पर स्त्रियों द्वारा गाया जाने वाला प्रसिद्ध लोकगीत है।

उदाहरण –

"खेलण द्यो गणगौर, भँवर म्हानै खेलण द्यो गणगौर।
म्हारी सखियाँ जावे बाट हो भँवर, म्हानें खेलन दो गणगौर।"

- **बादली गीत** – शेखावाटी, मेवाड़ व हाड़ौती क्षेत्र में गाया जाने वाला ऋतु से सम्बन्धित गीत हैं।

उदाहरण –

"बादली बरसे क्यूँ नी ए, बीजली चमके क्यूँ नी ए।"

- **ईंडोणी गीत –** ईंडोणी (चूमली–पानी के मटके व सिर के बीच रखी जाने वाली वस्तु) विषय को लेकर जब पानी भरने जाती है तब गाती हैं।,

उदाहरण –

"पाड़ोसन बड़ी चकोर ले गई ईंड़ोणी

ईंडोणी रे कारणै म्हारी सासू बोले बोल, गम गई ईंडोणी।

ईंडोणी बतावे जाने देवुँ हीरा रो हार, गम गई ईंडोणी।

सासू सूती पोल में ससुराजी पहरादार, गम गई ईंडोणी।"

उपरोक्त लोकगीतों के वर्गीकरण के आधारों में विद्वानों द्वारा इस बात का उल्लेख हुआ है कि लोकगीतों का वर्गीकरण जातियों की दृष्टि से भी किया जाता है। हमारे यहाँ अनेक धर्म एवं इन धर्मो में अनेक जातियाँ और उपजातियाँ मिलती है। वैसे देखें तो हर जाति की अपनी–अपनी एक विशिष्ट पहचान होती है। यह पहचान संस्कृति की दृष्टि से, व्यवसाय की दृष्टि से, खान–पान, पोशाक आदि की दृष्टि से है किन्तु आज स्थिति काफी बदल गई है। एक समय था, जब गाँवों में कुछ जातियाँ ही गीतों का निर्माण करती थीं और उन्हें गाती थी। उन गीतों पर उन जातियों का ही एकाधिकार था। एक तरह से कुछ विशिष्ट गीतों से विशिष्ट जातियों का बोध होता है।

जनजातीय लोक गायन शैलियों का तुलनात्मक विवरण

राजस्थान की प्रमुख जातियों में अनेक लोकगीतों का प्रचलन देखा जा सकता है वहीं इन सब लोकगीतों से भिन्नता रखने के कारण तालबंदी गायकी का सम्बन्ध आदिवासियों में देखा गया है। पूर्वी राजस्थान में इनकी अधिकता पाई जाती है और इनकी गायन शैली भी विशिष्टता लिए हुए होती है। सभ्य समाज से इनके लोकसंगीत की तुलना निम्न प्रकार से करने का प्रयास इस शोध कार्य के माध्यम से किया गया है। इनकी तालबंदी गायन शैली के कारण इनमें विभिन्न प्रकार के लोकगीतों का प्रचलन वर्तमान में भी देखा जा सकता है। क्योंकि इस शोध में सवाई माधोपुर जिले के जनजातीय समूह को केन्द्र में रखा गया है इसलिए जो गायन शैलियाँ प्रस्तुत की जा रही है। वह इस क्षेत्र में प्रमुख रूप से जनजाति (मीणा) के लोगों द्वारा वर्तमान में गायी जा रही है।

1) हैला ख्याल –

'ख्याल' का शाब्दिक अर्थ 'खेल', ख्याल की प्रतियोगिता 'दंगल', ख्याल का सूत्रधार 'हलकारा' भाग लेने वाले कलाकार 'खिलाड़ी', दल 'अखाड़ा' कहलाता है तो दल का मुखिया 'उस्ताद' कहलाता है।

वर्तमान में हिन्दुस्तानी कंठ संगीत की सर्वाधिक लोकप्रिय शैली 'ख्याल' ही है। 'ख्याल' फारसी भाषा का शब्द है इसका अर्थ है – विचार या कल्पना। प्रसिद्ध सूफी–सन्तों की रचना 'ख्याल' कही गई है।

विद्वानो के अनुसार मध्यकालीन संगीत में प्रचलित 'रूपक' नामक प्रबन्ध से ख्याल शैली का विकास हुआ है वहीं राजस्थान में 'ख्याल' नियमित रूप से लोककला के रूप में सम्पन्न होने के प्रमाण 18वीं सदी के प्रारम्भ से ही मिलते हैं।

ख्याल गायन परम्परागत लोकजीवन में प्रचलित पौराणिक आख्यानों (धार्मिक, सामाजिक,ऐतिहासिक) का पद्यबद्ध रचनाओं के रूप में प्रदर्शन कर, सामान्य जनता का मनोरंजन करने हेतु जनजाति का प्रमुख माध्यम रहा है।

प्रारम्भ में इसके कलाकार 'हेला' जाति के होते थे अतः इसको "हैला ख्याल" के नाम से जाना गया परन्तु कई मत इसकी मुख्य विशेषता स्थानीय भाषा के शब्द हेला देना अर्थात् आवाज लगाना, जब लम्बी टेर में आवाज दी जाती है, तो आंचलिक भाषा में इसका जोर से आवाज लगाकर बुलाने के अर्थ में प्रयोग होना पाया जाता है। इसी कारण से कालान्तर में इसका नाम 'हैला ख्याल' पड़ा।

राजस्थान में मुख्य रूप से निम्न ख्याल प्रचलन में देखने को मिलते हैं –

1) जयपुरी ख्याल
2) कुचामनी ख्याल
3) तुर्रा–कलंगी ख्याल
4) अलीबक्शी ख्याल
5) शेखावाटी/चिड़ावा ख्याल
6) ढ़प्पाली ख्याल
7) किशनगढ़ी ख्याल
8) हाथरसी ख्याल
9) हैला ख्याल

- जयपुरी ख्याल की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें स्त्रियों के सभी पात्रों की भूमिका स्त्रियाँ ही निभाती है। जयपुर के गुणीजन 'खाने के कलाकार' इस ख्याल में हिस्सा लेते हैं। जोगी–जोगन, कान–गुजरी, मियाँ–बीवी, रसीली तंबोलन, पठान आदि जयपुरी ख्याल के लोक प्रसिद्ध ख्याल रहे हैं।
- कुचामन सिटी (नागौर) के आस–पास में प्रचलित होने के कारण इसका नाम 'कुचामनी ख्याल' पड़ा। कुचामन ख्याल के प्रवर्तक 'लच्छीराम' थे। इसका स्वरूप 'ओपेरा' (पाश्चात्य संगीत) के जैसा होता है तथा इसमें लोकगीतों की प्रधानता रहती है। चाँद नीलगिरी, राव रिड्मल तथा मीरा मंगल आदि प्रसिद्ध ख्याल रहे हैं।
- तुर्रा–कलंगी ख्याल की रचना शाह अली (मुस्लिम) और तुकनगीर (हिन्दु) दो संतो ने की जो मध्यप्रदेश के चंद्रेरी राज्य के थे। तुकनगीर 'शिव' के उपासक थे तथा शाहअली 'शक्ति' के उपासक थे इसी कारण तुकनगीर (तुर्रा) को महादेव (शिव) तथा शाह अली (कलंगी) को पार्वती का प्रतीक माना गया। तुर्रा–कलंगी ख्याल में 'चंग' मुख्य वाद्ययंत्र होता है तथा चित्तौड़गढ़ में यह प्रचलित रहा है।
- अलीबक्शी ख्याल के प्रर्वतक व प्रमुख कलाकार 'अलीबक्श' है। इसका प्रमुख क्षेत्र पूर्वी राजस्थान के अलवर का 'मुंडावर ठिकाना' रहा है।
- शेखावाटी/चिड़ावा ख्याल के प्रवर्तक 'नानूराम चिड़ावा' है। जिनका सम्बन्ध झुन्झुनु जिले से हैं। वहीं 'दुलियाराणा' ने इसको लोकप्रिय किया। हीर–रांझा, जयदेव, भृर्तहरि, अल्हादेव, ढोला–मरवण आदि इसकें लोकप्रिय ख्याल रहे हैं।
- ढप्पाली ख्याल का मुख्य क्षेत्र 'अलवर' जिला है तथा इसके मुख्य वाद्ययंत्र ढोल, नगाड़े व शहनाई होते हैं।
- किशनगढ़ी ख्याल के मुख्य कलाकार 'बंशीधर शर्मा' है तथा इसका प्रचलन अजमेर के पास 'किशनगढ़' नामक स्थान पर ही देखा जाता है इसी कारण इस ख्याल का नामकरण 'किशनगढ़ी ख्याल' पड़ा।

- 'हाथरसी ख्याल' में नत्थाराम गौड़ ने प्रसिद्धि प्राप्त की है।
- हैला ख्याल के मुख्य प्रवर्तक 'हेला शायर' थे। इसके गायन के प्रारम्भ होने से पूर्व 'बम' वाद्य यंत्र का प्रयोग किया जाता है ताकि दूर–दूर तक लोगों को पता लग जाए कि संगीत का आयोजन प्रारम्भ हो गया है। वर्तमान में इसका मुख्य वाद्य यंत्र "नौबत" है। हैला ख्याल का गायन दंगल के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसी कारण इसमें शायर या आशुकवियों का मुख्य योगदान रहता है जो पद्यबद्ध रचनाओं को इस गायन के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं।

चित्र सं. 5.5 : 'हैला ख्याल' गायन शैली का प्रस्तुतीकरण करते हुए जनजातीय लोक कलाकार

वर्तमान में इसका प्रचलन दौसा (लालसोट) के क्षेत्रों में अत्यधिक है। इसका गायन पुरूषों के द्वारा ही किया जाता है। वर्तमान में "हैला ख्याल" के गीतों का स्वरूप इस प्रकार का है –

उदाहरण –

ऐऽऐऽरेऽरेऽ देख रहै मस पान दुलारी,
मंद–मंद मुस्का रई ऐ...
ग्वालन के संग धेनु चराऐ
उने कृष्ण कलाऐं रे...
अऽरेऽ आपाँ भी खेलेंगाा ढोला मेरे मन में आई हैऽऽऽऽ
अऽरेऽ आपाँ भी खेलेंगा ढोला मेरे मन में आई रेऽऽऽऽ
नही और खेल मेरे मन को, या आँख मचोली बन काऽऽऽऽ
अऽरेऽ मोहे हेर ले गिरधारीऽऽऽऽ
या मोको देख कदम कोऽऽऽऽ

अर्थ/भावार्थ –

राधा–कृष्ण वन में भ्रमण करते समय ग्वाल–बालों को खेलता देख, स्वयं भी आपस में आँख–मिचोनी का खेल खेलने लगते हैं। तब राधा कहती है– कि मेरे मन में और कोई खेल नहीं है, मुझे तो बस यही खेल (आँख–मिचोनी) ही खेलना है और कदम के वृक्ष के नीचे दोनों खेलना प्रारम्भ कर देते हैं।

2) रसिया–

रसिया के अर्थ से सम्बन्धित विद्वानों के अनेक मत प्रचलन में है किन्तु जनसाधारण में 'रास' से इसकी उत्पत्ति मानी जाती है। क्योंकि श्री कृष्ण से सम्बन्धित कथाओं को स्थानीय भाषा में "रास लीला" कहा जाता है। और इसी आधार पर विद्वानों ने 'रसिया' के रूप में परिवर्तन होने पर अपने तर्क–वितर्क प्रस्तुत किए हैं।

'रसिया' लोकगीतों का सम्बन्ध होली के अवसर पर गाए जाने वाले लोकगीतों से भी होता है। जो अलवर, भरतपुर (ब्रज क्षेत्र) में किए जाने वाले 'बम नृत्य' के साथ गाए जाते हैं। जिनमें श्री कृष्ण की लीलाओं का उल्लेख किया जाता है।[23]

चित्र सं. 5.6 : 'रसिया' गायन शैली का प्रस्तुतिकरण करते हुए जनजातीय लोक कलाकार

"रसिया" लोकगीतों का प्रचलन राजस्थान में प्रमुख रूप से गुर्जर जाति में अधिक देखा जाता है और इन्हीं के द्वारा इनकी रचना प्रारम्भ में की गई। परन्तु कालान्तर में आपसी तालमेल के कारण इस गायन शैली को जनजातीय (मीणा) लोगों ने भी अपनाकर गाना आरम्भ कर दिया। किन्तु इन दोनों जातियों के द्वारा गायन में अन्तर देखा जा सकता है।

गुर्जर जाति के लोग रसिया गीतों में अक्षरों को अलग–अलग तोड़ कर बलपूर्वक इसका गायन करते है वहीं जनजाति (मीणा) के लोग शब्दों को वाक्य से तोड़ कर टुकड़ो में इसका गायन करते हैं।

---

[23] एन.एम.शर्मा "राजस्थान : प्रमुख लोकनाट्य" पृ.–99

दोनों ही जातियों में इसका गायन स़्त्री व पुरूष दोनों करते देखे जा सकते हैं। मांगलिक आयोजनों के समय इनका गायन किया जाता है तथा यह सामूहिक रूप से ही गाते हुए देखे जाते हैं।

उदाहरण –

अरे क मुरली हरिया बाँस की बाजे रेऽऽऽ
हरिया बाँस की बाजे रेऽऽऽऽ
पण दो नम्बर की गाड़ी सीटी देती जावे रेऽऽऽ
(रसिया)!
ओ मात–पिता रूक्मण जी के बोलेऽऽऽऽ
या नन्द जी को लालाऽऽऽऽ
भगतन के संग रास रचावेऽऽऽऽ
या ब्रज को रखवालाऽऽऽऽ
रऽकऽ मुरली हरिया बाँस की बाजे रेऽऽऽऽ
हरिया बाँस की बाजे रेऽऽऽऽ
पण दो नम्बर की सीटी देती जावे रेऽऽऽऽ
(रसिया)!

मीणा जनजाति के रसिया लोकगीतों की विशेषता रही है कि इन गीतों में रास/रसिया जैसे शब्दों को प्रयोग में लिया जाता है और इन गीतों की रचना की जाती है।

3) पद –

पद गायन का जनजाति मे अत्यधिक प्रचलन देखा जाता है और इनका दांगलिक रूप में गायन किया जाता है। पौराणिक धार्मिक कथाओं का सामूहिक रूप में इसका गायन किया जाता है।

जनजाति के द्वारा पद गायन का उद्देश्य धार्मिक संस्कारों से आमजन का परिचय कराना और अपने जीवन में आत्मसात करने के साथ समाज को एकजुट बनाए रखना है।

मुख्यधारा के सवर्ण समाज के गीतों को अपनी भाषा और लय के साथ अपनाया गया और इसी से तैयार हुए है लोकगीत "पद"। ये "पद" उस दौरान चले सुधार आन्दोलन है जो असल में आदिवासियों का धर्मांतरण था।

चित्र सं. 5.7 : 'पद' गायन शैली का प्रस्तुतिकरण करते हुए जनजातीय लोक कलाकार

उदाहरण –

" नवल गढ़ कुँआ घेर्‌यो दुष्ट इन्द्र बेरी नेऽऽऽऽ
सारो कटक चंड्‌यायो ढ़ोला रात अँधेरी में। "

अर्थ–

नवलगढ़ को आकर घेर लिया दुष्ट दुश्मन इन्द्र ने, सारी सेना चढ़ आई, हे प्रियतम इस अंधेरी रात में।

इस पद में राजा नल की पत्नी दमियन्ती अपने पति को उस समय खबरदार कर रही है, जब राजा इन्द्र अपने अपमान का बदला लेने के लिए अंधेरी रात में राजा नल के किले को चारों ओर से घेर लेता है।

4) ढाँचा–

"ढाँचा" शब्द से साधारण अर्थ निकलकर आता है– किसी भी वस्तु का कच्चा स्वरूप। जनजातीय लोकगीतों में साधारण बात को गीतों के माध्यम से कहने की अपनी विशिष्ट कला देखी जाती रही है।

छोटे–छोटे टुकड़ो में तुरंत अपनी बात सांगीतिक रूप से कहना इस गायन की मुख्य विशिष्टता रही है। स्त्री व पुरूष दोनों ही इसका गायन करते देखे जाते हैं। जीवन के सम्पूर्ण पक्षों से सम्बन्धित विषयों का इन लोकगीतों में गायन किया जाता है।

चित्र सं. 5.8 : 'ढ़ाँचा' गायन शैली का प्रस्तुतिकरण करते हुए जनजातीय लोक कलाकार

सामान्य जीवन की घटनाओं को धर्म से जोड़कर व सांकेतिक शब्दों का प्रयोग इन गीतों में देख जा सकता है।

उदाहरण –

सर सोना को थाल, हीरा–मोती सूँ भरेऽऽऽऽ।
न्यहाँ सूँ भाग जा बाबा जी, म्हारो कान्ह जी डरेऽऽऽऽ।।

अर्थ –

जब श्री कृष्ण बालक थे तब भगवान शिव श्री कृष्ण के बाल अवतार के दर्शन करने के लिए यशोदा मैया से विनती करते हैं कि मुझे एक बार बालकृष्ण को देख लेने दो। परन्तु उनका बदला हुआ भेष और सन्यासियों के कपड़े देख यशोदा सोचती हुई कहती है कि आप चाहे स्वर्ण, हीरे, मोती ले लो परन्तु आपसे मेरा छोटा–सा कन्हैया डर जायेगा इसलिए कृपा करके आप यहाँ से चले जाइए।

5) उच्छांटा –

'उच्छांटा' लोकगीत मीणा जनजाति के प्राचीनतम ज्ञात गीत है। जनजाति के संस्कृतिकरण के बाद इन्हें सभा या ऊँची आवाज में गाँव में गाने पर पाबंदी लगा दी गई थी क्योंकि सामाजिक दशाओं के साथ ये मानव के उन भावों का भी प्रतिनिधित्व करते हैं जिन्हें तथाकथित सभ्य समाज में अश्लील समझा जाता है।

'ऊँछटना' शब्द के स्थानीय भाषा में दो अर्थ निकलकर आते हैं– छँटे हुए तथा ऊछल कर। जनजाति की अपनी विशिष्ट संस्कृति होती है और इसी का परिणाम है कि एक अलग विशिष्टता इनके संगीत में दिखाई देती है।

चित्र सं. 5.9 : 'उच्छांटा' गायन शैली का प्रस्तुतिकरण करते हुए जनजातीय लोक कलाकार

'ऊच्छांटा' लोक गीतों में जनजाति की अश्लीलता या असभ्यता स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। किसी भी सभ्य समाज का यह दोष माना जाता है कि स्त्री–पुरूष में भेद है। इसी आधार पर अनेक नियम सामाजिकता को बनाए रखने के लिए प्रारम्भ से ही लागू किए गए थे। जनजातीय संस्कृति सभ्य समाज से भिन्न रही है और यही कारण है कि जो सभ्य समाज स्त्री–पुरूषों के लिए उचित नहीं समझा जाता वे ही इस जनजाति के गुणों के रूप में परिलक्षित होते दिखाई देते हैं।

सामूहिकता जनजाति की विशिष्टता रही है और इनकी पहचान भी। इसी कारण इनके संगीत के विभेदीकरण को भी विशिष्ट रूप से समझने की कोशिश की जानी चाहिए।

उदाहरण –

"पाजेब न ल्यायो तो फेरां प कोनी बैठूँ परण्या।।"

अर्थ–

एक बिन ब्याही लड़की अपने होने वाले पति से कह रही है कि अगर वो पायल (पैर का गहना) नहीं लेकर आयेगा तो उसके साथ वह विवाह नहीं करेगी।

अतः ऐसे लोकगीतों के माध्यम से साधारण से साधारण बात कहने का जो तरीका इन लोक गीतों में दिखाई देता है। वह जनजतीय संस्कृति को हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है।

6) सुड्डा–

जनजाति (मीणा) की यह विशेषता रही है कि इनकी भाषा में बहुत सारे शब्दों के कोई स्पष्ट अर्थ नहीं होते हैं। यह केवल प्राकृतिक रूप से निर्मित हुए और निरन्तर उसी रूप में प्रयोग किए जाने लगे।

क्योंकि इन लोगों की अपनी कोई स्पष्ट लिखित, प्रामाणिक, भाषायी शैली उपलब्ध नहीं होती इसीलिए अन्य भाषाओं को अपने उपयोग में लेना इनकी अपनी विशिष्टता रही है। "परिवर्तन जीवन का मूल आधार है" और ये विचारधारा जनजाति प्रारम्भ से ही अनुकरण करती रही है यही कारण है कि इनकी संस्कृति दीर्घायु है।

जनजाति के लोगों में अपने विशिष्ट नियम व कानून होते हैं जिनका पालन करना इनके लिए अनिवार्य होता है। प्रारम्भ में इन लोगों में स्त्री–पुरूषों में कोई लिंग भेद जैसी अवधारणा नहीं थी परन्तु कालान्तर में सभ्य समाज के सम्पर्क के कारण अनेक रूढ़ियों को भी ये अपनाने लगे और इसका प्रभाव इनके लोकगीतों पर भी पड़ा।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तक 'सुड्डा' लोक गीतों का गायन स्वतंत्र रूप से जनजाति (मीणा) के द्वारा किया जाता था परन्तु बाद में स्त्रियों और पुरूषों के 'सुड्डा' गायन में परिवर्तन कर दिया गयाया यूँ कहें कि स्त्रियों कई प्रकार के पर नियम लागू कर दिए गए। जो इनकी रूढ़िता को दर्शाता है।

'सुड्डा' लोकगीत विशेष रूप से सामाजिक बुराईयों पर कटाक्ष करने के प्रमुख अस्त्र के रूप में प्रयोग किए जाते रहे हैं और स्त्रियों पर इसके गायन को लेकर नियमों का आरोपित करना भी एक प्रमुख कारण माना जा सकता है।

चित्र सं. 5.10 : 'सुड्डा' गायन शैली का प्रस्तुतिकरण करती हुई जनजातीय लोक कलाकार

हालांकि वर्तमान में स्त्री व पुरूष दोनों ही 'सुड्डा' लोकगीतों का गायन करते देखे जा सकते हैं परन्तु स्त्रियों पर सुड्डा गायन को लेकर कुछ विशेष नियम लगाये गए हैं, जिनमें प्रमुख नियम इस प्रकार है–

- 'सुड्डा' का गायन करते समय स्त्रियाँ सावधान की मुद्रा में खड़े होकर ही गायेगी।
- केवल स्त्रियाँ सामूहिक रूप में इसका गायन नहीं कर सकती परन्तु सामूहिक गायन शैली होने के कारण सहयोग पुरूषों के द्वारा किया जा सकता है।

उपरोक्त नियमों का प्रभाव सदैव रहे यह परिवेश स्थिति के अनुसार ही देखा जाता है। क्योंकि 'सुड्डा' एकमात्र समाज विरोधी लोकगीतों के रूप में देखे जा सकते हैं इसलिए वर्तमान में इनके गायन पर विशेष रूप से पाबन्दी लगा दी गई है। फिर भी कुछ अपवाद स्वरूप इनके लोककलाकार जनजातीय समाज में विशेष ख्याती प्राप्त कर चुके हैं।

स्त्रियों द्वारा गाए जाने वाले और पुरूषों द्वारा गाए जाने वाले 'सुड्डा' लाकगीतों में विशेष अन्तर देखा जा सकता है।

उदाहरण –

संकट पड्यो गजब गेलन मे रे,
भवानी दुख पावे।
सपरा जी मे पाणी पी बे कूँ,
नहीं पावे रे।।

अर्थ–

रास्ते में जाते समय भारी संकट आ गया, अब तो स्वयं माँ भवानी भी दुःखी हो गई क्योंकि सपरा (नदी) में पानी सूख गया है।

कथा/भावार्थ–

यह सुड्डा शिव–बालादेव की कथा के उस प्रसंग से हैं जब माँ पार्वती ने देव जी की परीक्षा लेनी चाही। उनके द्वारा तैनात वीर ने सपरा नदी का पूरा पानी पी लिया था और सूखी नदी से मची त्राही को समाप्त करने के लिए देवजी ने उस वीर से युद्ध कर नदी को स्वतंत्र कराया।

7) कन्हैया–

अपने स्वरूप के कारण विद्वानों ने 'कन्हैया' को लोकनाट्यों की श्रेणी में रखा। परन्तु वर्तमान में अब इसके स्वरूप में कई परिवर्तन देखने को मिलते है।

अस्सी के दशक तक इसके गायन के साथ नृत्य भी किया जाता था जिस कारण इसे लोकनाट्यों में सम्मिलित किया गया था। परन्तु वर्तमान में केवल इसका गायन किया जाता है अतः इसे लोकगायन की श्रेणी में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

चित्र सं. 5.11 : लयबद्ध ताल प्रदर्शन

'कन्हैया' लोकगीतों की यह विशेषता रही है कि लोक कलाकारों के पास कोई वाद्य–यंत्र उपलब्ध न होने पर गायक दल अपने हाथों से लयबद्ध ताली बजाकर इसका गायन करते हैं।

चित्र सं. 5.12 : 'कन्हैया' गायन शैली का प्रस्तुतिकरण करते हुए जनजातीय लोक कलाकार

क्योंकि इसमें गायक दल समूह में सदस्यों की संख्या 70 से 80 व्यक्तियों तक होती है इसीलिए स्पष्ट रूप से इनकी ताल की लयबद्ध गति सुनाई पड़ती है और इसी लय के आधार पर इसे 'तालबन्दी गायन शैली' की श्रेणी में सम्मिलित किया गया है।

'नौबत' तथा 'घेरा' वाद्य यंत्र इसके गायन में प्रमुख रूप से उपयोग में लिये जाते हैं। 'घेरा' चंग से बड़े आकार का वाद्ययंत्र होता है। जिस पर डफ की तरह एक ओर चमड़ा मढ़ा जाता है। लकड़ी के ऊपरी भाग पर कपड़ा लपेट कर इसे बजाया जाता है।

चित्र सं. 5.13 : 'कन्हैया' गायन शैली में प्रयुक्त किया जाने वाला लोक वाद्य यंत्र

हालांकि वर्तमान में अपनी–अपनी विशिष्टता प्रदर्शन हेतु गायक दल अन्य वाद्ययंत्रों जैसे मंजीरा, करताल, ढोलक, नौबत, नगाड़ा, ढोल आदि का प्रयोग भी करने लगे हैं।

उदाहरण –

ओर बिसल दे दरबार भूप ने ऐसो मतो उपाये,
ओर सात सुता लई बुला भूप ऐसो वचन सुनाये।
हेऽरेऽ
भूप ने पूछी जब सातो बाई से
भोजन किसके भाग्य बली से
थम रही तो सटाटी पाई र
खोल बता मो म भेद बात केऽऽऽऽ
हेऽरेऽ
सातो सुता बुला भूप ने लई ये हका
पूछ रह्यो दरबार बगल में बैठ सटाटी रही ए
कह रही भोजन पिता भाग्य से रही हम पाई रे
बोली म किस्मत से खा रही पदमा बाई रेऽऽऽऽ
आ र र र पदमा बाई ओ बोले ऐ से बेना रे
सुनत पिता के लाल गुलाबी हे गे तो दोऊ नैना रेऽऽऽऽ
आँखन देखी नहीं जाय पद्मा रोस बदन म छागो रे
परबत अपने पास भूप ने पहरेदार बुलायो रे
हे पिता जी ऐसे बोल रयो...

अर्थ/भावार्थ–

एक समय राजा बीसलदेव ने अपनी पुत्रियों की परीक्षा लेने की ठानी और अपना दरबार लगाकर अपनी सातों पुत्रियों को दरबार में बुलाया और फिर उनसे पूछा – कि तुम सभी किसके भाग्य का भोजन खा रही हो ? तब दरबार में उपस्थित सातों पुत्रियों में से छः ने उत्तर में कहा कि – "हम तो आपका ही दिया हुआ खा रही है अर्थात् आपके भाग्य का ही खा रही है।" परन्तु जब सबसे छोटी पुत्री पद्माबाई ने उत्तर दिया कि "वो तो स्वयं के भाग्य का ही खा रही है।" तो राजा के नयन लाल गुलाबी हो गए अर्थात् उसे गुस्सा आ गया और तुरन्त अपने पहरेदारों को अपने दरबार में उपस्थित होने का आदेश देता है।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह सार निकलकर आता है कि जनजाति के जीवन में धार्मिक कथाओं का सांगीतिक स्वरूप अपनी विशिष्टता के साथ विद्यमान है जिससे यह स्पष्ट होता है कि इनके जीवन में संगीत का अत्यधिक महत्व है।

अध्याय षष्ठम्

- **जनजातीय लोकगायकी : कन्हैया का स्वरलिपि सहित संग्रहण**

अध्याय षष्ठम्

जनजातीय लोकगायकी : कन्हैया का स्वरलिपि सहित संग्रहण

'कन्हैया' गायन शैली एक ताल प्रधान गायकी है। जनजातीय लोक संगीत की इस गायन शैली के अध्ययन हेतु तथा इस गायन शैली को संरक्षण प्रदान करने हेतु इन लोकगीतों को संकलित करने का प्रयास इस शोध के माध्यम से करने का प्रयास किया गया है। क्योंकि जनजाति के द्वारा ही इन लोकगीतों का गायन किया जाता रहा है इसलिए निश्चित धुनों और निश्चित तालों का ही प्रयोग इसकी गायकी में किया जाता है तथा ये सभ्य समाज की पहुँच से अभी तक दूर हैं।

"कन्हैया" गायन शैली में बहुधा 4 मात्रा या 8 मात्रा की ताल का प्रयोग होता है। इनकी गायन शैली में मुख्यतः सारंग, भूपाली, दुर्गा रागों के स्वर देखने को मिलते हैं। ज्यादातर ये 3 या 4 स्वरों में गाये जाते हैं, जैसे – सारंग में नि॒ सा रे सा या भूपाली में ध़ सा रे ग ग रे सा एवं दुर्गा में सा रे म रे सा ध़ सा। इन्हीं स्वरों की पुनरावृत्ति अधिकांशतः देखने को मिलती है। यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि अधिकतर आदिम जातियों का लोक संगीत 3 या 4 स्वरों पर ही आधारित होता है। इसका मुख्य कारण इनकी सरल जीवनशैली है। जिसमें किसी प्रकार की क्लिष्टता नहीं है। यही कारण है कि इनका लोक संगीत भी सरल एवं सुगम होता है। क्योंकि ये लोग समूह में गाते हैं अतः इनके संगीत में शास्त्रीयता का अभाव रहता है किन्तु फिर भी कहीं–कहीं शास्त्रीय पक्ष की झलक देखने को मिल जाती है।

जब भी "कन्हैया" लोक गीतों का दंगलों में गायन किया जाता है तब सर्वप्रथम हिन्दु रीति के अनुसार गणेश जी को अपने इष्ट रूप में सर्वप्रथम स्मरण कर अन्य लोक देवी–देवताओं जिनकी मान्यताऐं ये रखते हैं उनकी स्तुति को सर्वप्रथम प्रार्थना स्वरूप गाकर इसका गायन प्रारम्भ किया जाता है और वहीं से एक दल का "कन्हैया" का आरम्भ माना जाता है। अतः उसी को यहाँ संकलित किया गया है। लगभग सभी दल ऐसी वन्दना गाते हुए देखे जाते हैं।

(1) गणेश वन्दना एवं भवानी –

पद

हेऽरेऽ विघ्न हरण मंगल करण, गणनायक गणराज।

प्रथम निमंत्रण आपको तो सकल सुधारो काज।।

पद

आडरेड (आलाप)

महलन में जन्मयो गौवरी नन्द गणेश

सखी सब आ जा ज्यो।

गाजा बाजा सूँ छोरा को कुओ पुजा लाज्यौ।।

महलन में जन्मयो.....

अब सदा भवानी दायनी सनमुख रहत गणेश।

और पाँच देव मिल रक्षा करो ब्रह्मा विष्णु महेश।।

महलन में जन्मयो....

पद

हाँडरेड

रणत भँवर से बेगो आजा पहले तोई मनाऊ रे।

थारा चरणन् में गजानन्द शीश नवाऊँ रे।।

- अब गणपत प्यारे लाल बचारे, आये सेवक शरण तुम्हारे।

  रणत भँवर गढ़ आप बिराजे, दरवाजे पे नौबत बाजै।।

  अब एक दन्त गज वन्दना, गजानन्द महाराज।

  मीणा क्षत्री सभा का तो सकल सुधारो काज।।

  रणत भँवर से बेगो.....

- अब सोवे चन्द्र तुम्हारे भाल, तेरे गल मोतियन की माल।

  परसा लीनो कर में धार, होवे तुम मुझ पे असवार।।

  अब चण्डी मायन ता स्वरूप, ता भोजन असवार।

  ताके पिता के मित्र को, तो जपि हो बारम्बार।।

  ओ रणत भँवर से बेगो.....

- सुन्ध सुन्धाड़ा धुन्ध–धुन्धाड़ा, कर दे दुश्मन का मुँह काला।

  शुभकारी आनन्दकारी, तेरी महिमा जगत में भारी।।

  अब रणत भँवर के लाड़ला, और बरवाड़ा की चौथ।

  माधोपुर के काला गौरा, तेरी जले अखण्डी जोत।।

- ओऽ बरवाड़ा की चौथ भवानी बैठ सिंह प आजा ज्यो।

  म्हारी भरी सभा में नैया पार लगा जा ज्यो।।

मऽऽऽ
ओऽऽऽ

1	2	3	4	1	2	3	4
मम	म	म	म	रे	मम	म	म
बर	वा	ड़ा	की	चौ	थभ	वा	नी
×				×			
ध़	ध़	ध़सा	–सा	सा	सा	रेग	म
म्हा	री	भरी	ऽस	भा	में	नैऽ	य्या
×				×			
सा–	सासा	ध़सा	सा	मरे	म	रे	सा
पाऽ	रल	गाऽ	जा	ज्योऽ	ऽ	मै	या
×				×			

(इस तरह ये स्वर राग दुर्गा के प्रतीत होते हैं और ये 4–4 मात्रा में गाये जाते हैं। यहाँ 4 मात्रा को कहरवा ताल का अद्धा भी कहा जा सकता है।)

अब जाग–जाग मातेश्वरी सोवत है तू जाग।

मोसे लिपट गरीब की मैया रख दंगल में लाज।।

ओऽ बरवाड़ा की चौथ भवानी.....

- अब आओ मैया वास करो, मेरे घट का परदा खोल।

  रसनापुर वासा बसेगो मैया सारा शब्द मुख बोल।।

  ओ वरवाड़ा की चौथ भवानी.....

- मनाऊँ मैं तो भरी यो सभा न खेतरपाल मनाऊँ रे।

  हनुमत भैरू का जन्म गुण गाऊँ रे।।

  अब भैरू कर भटकड़ा दिन म सो–सो बार।

  बाँका न सुदा करे तो दे घोटा की मार।।

  मनाऊँ मैं तो भरी यो सभा.....

(स्रोत – हंसराज मेडीया, उम्र – 58 वर्ष (कौशाली) से सुनकर लिपिबद्ध किया गया।)

उपर्युक्त वन्दना विभिन्न गाँवों में प्रचलन के अनुसार लोक देवी–देवताओं का नाम स्मरण करते हुए 'कन्हैया' लोकगीतों के गायन के आरम्भ के साथ गाई जाती है।

कन्हैया लोकगीत 1

"अमरकथा"

हेऽरेऽ (आलाप)

कैलासन के बीच एक दिना आपस म प्या रै।

ओर शिवधन करना कर निभा द वचन तो हमारे।।

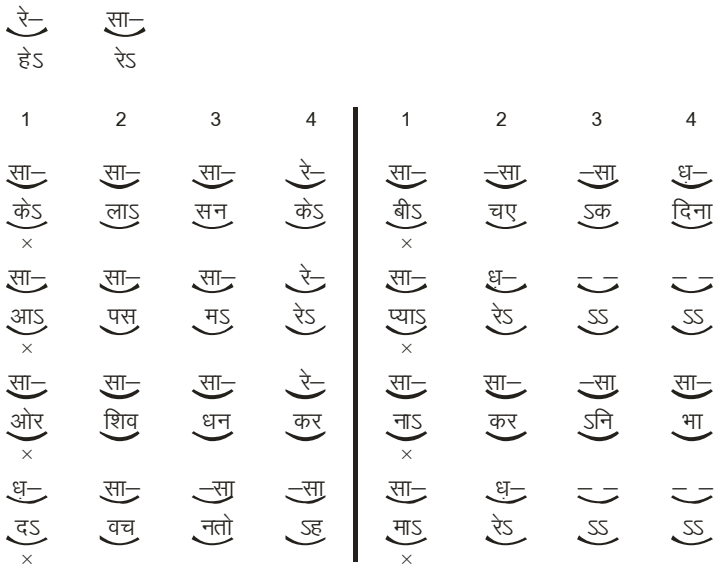

झड़ी

हेऽरेऽ (आलाप)

कर तेा भजन तपूधारी

ओऽ झेले तोमे नेतो सर के भरता वण तेरी नारी

मीठा बोला सूँ कपट मत राखे रे ऽ ऽ

तेरी अमर कथा को ज्ञान सुणा रंग डोला रे ऽ ऽ

चौपाई

अर कुण न बेकाई नार तोय,कुण न अब बेकाई रे ऽ ऽ

कर पीछे की बात याद तोय, कुण न आ बेकाई रे

अरे जवानी जोबन सबरो खो दियो कैलासन के माही रे ऽ ऽ

अमरकथा न कई मैं बलम तेने भारी तो बेकाई रे

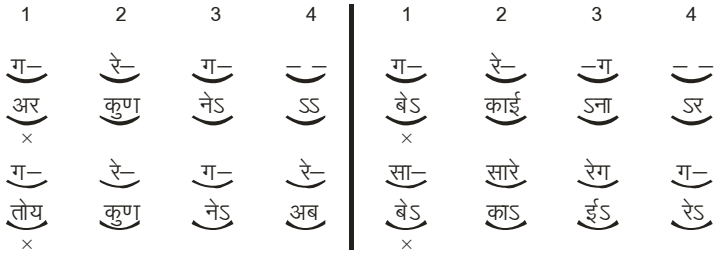

1	2	3	4	1	2	3	4
रे–	रे–	रे–	रे–	रे–	–रे	–रे	प–
कर	पीऽ	छेऽ	कीऽ	बाऽ	तया	ऽद	तोय
×				×			
प–	प–	ग–	सा–	रे–	सा–	सा–	– –
कुण	नेऽ	आऽ	ईबे	काऽ	ईऽ	रेऽ	ऽऽ
×				×			
ग–	–ग	ग–	गग	रेऽ	ग–	ग–	ग–
अरे	ऽज	वाऽ	नीजो	बन	सब	खोऽ	दियो
×				×			
रे–	ग–	रे–	सा–	सारे	रेग	ग–	– –
कैऽ	लाऽ	सन	केऽ	माऽ	हीऽ	रेऽ	ऽऽ
×				×			
रे–	रे–	रे–	रे–	रे–	रे–	रे–	रे–
अम	रक	थाऽ	नऽ	कई	मैंब	लम	तेने
×				×			
प–	प–	ग–	सा–	रे–	सा–	सा–	– –
भाऽ	रीऽ	तोऽ	बेऽ	काऽ	ईऽ	रेऽ	ऽऽ
×				×			

(उक्त रचना में राग भूपाली के स्वर परिलक्षित होते हैं, यह 4–4 मात्राओं में विभाजित करके गाया जाता है।)

झड़ी

अरे बोल तो बोल मीठा बोला,
हो ऽ मर ज्यागी विषखार नार
भरतार आज तेरी ढोला
छूटे प्रेम के लपेटा बल टूटेऽऽ
कैलासन म तेरे मेरे नाते अब टूटेऽऽ
कर–कर तन आपस म ही सारे रंग लूटे

झोला

ओ ऽ दम ल लता – ल लता बलम दम ल ल रे
तेरी धन से कुछ तो कह दऽरेऽ

1	2	3	4	1	2	3	4
सा–	रेरे	सासा	सासा	साध	रेरे	सासा	ध–
ओऽ	दम	लल	तोब	लम	दम	लल	रेऽ
×				×			
रेरे	सासा	सासा	साध	रे–	सा–	सा–	ध–
तेरी	धन	सेकु	छतो	कह	देऽ	रेऽ	ऽऽ
×				×			

चौपाई

तैने मेरे संग म भँवरिया खाई रे
मोय अब भारी तो बेकाई रे ऽ ऽ
मोय अब भारी तो बेकाई रे ऽ ऽ
काँई म्हारे लिख दई करमन म
ठाढ़ी तो अरज कर रही चरणन् म
ठाढ़ी तो अरज कर रही चरणन् म
स्वामी त न विष पी लियो मूंडा म
नारी आ पहुँची घूंडा म
बिच्छू कानन म
सर्प लपेटा खाव भस्मी सारे तन म (र)
गवरज्या कह रही तो.....

डट्टा न. 1

हे ऽ रे ऽ (आलाप)
अरे वा कैलासन के बीचन म तो
अरे गवरज्या कैसे कह रही तो
ओ ऽ तीन लोक अर मण्ड खण्ड म
तो सरको नही पायो पति
कैसे कह रही नार सति
ओ ऽ बात सुणी शिव शंकर न
मुनि नारद न दियो दूत भड़ा
ओऽ रहबे कूँ नहीं रंग महल अटारी तो
वीणा बजातो फिर भडवा (र)
अड़मत झूठी बातन में ऽ ऽ
ओ कैलाशी काशी को वासी
शिव शंकर अवनाशी
सिर प जलो जधा
मोसे कह दई अमरकथा

चौपाई

अमरकथा रे ढोला मोकूँ तो सुणा दे
अमरकथा रे ढोला मोकूँ तो सुणा दे
तो प अमरकथा बतलाई, मोकूँ नारद न समझाई

भोला भण्डारी ऽ ऽ ऽ ऽ भण्डारी ऽ ऽ

अमरकथा रे ढोला मोकूँ तो सुणा दे

(उक्त रचना में राग तिलक कामोद के स्वरों का प्रयोग किया गया है।)

डट्टा नं. 2

हे ऽ रे ऽ (आलाप)

कर रही तो अरज भोलेनाथ से

ओ ऽ डम–डम–डम–डम डमरू बाजै

शिव के लग रही तड़ाफड़ी (रे)

पलक मे ऽ

झटा लटा फटकारी बन म

तीन बजा दयी ताली

परबत कर दियो सबलो खाली

पंछी उड़ गए तो ऽ

अ ऽ रे ऽ (आलाप)

शोर भारी मच रहे तो ऽ ऽ ऽ ऽ

हे ऽ रे ऽ आसन बिछा दियो बागम्ब नीचे

धरती ऊपर अम्बर छा गई

गगन घटा शिव न खोली अमरकथा

चौपाई

अ ऽ रे ऽ

शिव शंकर बोल्यो गिरना से

अब तू अमरकथा सुणज्यो

मतो तो से कथा कहूँ
तू हूँकारा देती री ज्यो
तू हूँकारा देती री ज्यो
अरे थोड़ी तो हाँ हूँ कहिनो
पीछे निन्द्रा आ गई है
दर कथा के भीतर सुगना ने
हूँकार लगा दई है
हूँकार लगा दई है

डट्टा नं. 3

हा ऽ रे ऽ (आलाप)
बेसोदी की तिरथा सो बलगी
सुआ न हूँका दियो
मीठी अमरकथा को रस लियो (रे)
गवरज्या पड़ी तो भैंस की नाई रे ऽ
आसन पे बैठी–बैठी सोई,
नींद बाकू आई रे।
सुध–बुध नहीं तन की,
गौरी धन की,
खाँ से तो आ बैठ्यो बेईमान
ठसक याका काडू मन की

चौपाई

आ ऽ रे ऽ
पीछ्यो नहीं छोड़ शिव शंकर
आगे सुगना भगतो जाय
एड़ी दाब्या जा र्यो भोले
सुगना बहुत रयो घबराय
सुगना बहुत रयो घबराय
अ ऽ रे ऽ व्यास भवन म पहुँच्यों पंछी
नारी शीश गुँथाती पाय
खूँटो मूँडो उल्यो र पेट म
शिव शंकर ठाडो रह जाय
शिव शंकर ठाडो रह जाय

डट्टा नं. 4

शिव को रसी मुनि र समझाई
अमर कोनी देख्यो मरतो
मत ना सोस कर र भोलानाथ
चल्यो जा सूदो परबत पर
सोस मत कर तो हाथ नहीं आयो र
वा न पायो तो अमर पद भारी र
गगन मण्डरायो र
झुक आई गगन घटा
माथे प जटा

चौपाई

जाय ऊल्यो पंछी नारी का पेट म
काँई कूँ ठाड़ो तू सोच रियो
वा न सुनी तेरी मीठी कथा
गज विन मजा रंग लूट लियो (रे)
सोच काँई होय गो करबे में ऽ ऽ ऽ ऽ
ओ ऽ देख्यो वाको ढंग झहरी नांग तो भुजंग
ताली भूत बजाव संग
शिव लहरी पिसता
ता था थई धा ऽ ऽ आ धम
डमरू धारी न उठायो त्रिशूल
भवानी ढिंग बेगो–बेगो जा

कन्हैया लोकगीत 2

"कृष्ण और अर्जुन संवाद"

हे ऽ रे ऽ (आलाप)

एक दिना की बात द्वारकानाथ सोच रियो मन म।

और हथनापुर को भगत उधव को लेके संग म।।

पेड़ा बन्दी

ओ ऽ पाणी पहलां पाल कैसे बाँध म्हारी

महाभारत होवेगे मेरे याही तो भरी

राधा–रूक्मण बूझ दोनु महलन म खड़ी

ओ ऽ गीता लेके जावै अर्जुन ज्ञान से रीजै

करण बली तो वा प भरी तो खीजै

महाभारत म बासे कैसे होवेगी विजै

झड़ी I

हे ऽ रे ऽ (आलाप)

उधव वैद्य देख ले मेरो है का मे से काड़ो

टेम पेट को हिल न पाणी मेरो

का परलय भारी होई बताईयो

तोय विपत्त समझावे रे ऽ

लाठी टूटे नाही सर्प अवश्य मर जावे रे ऽ

झड़ी II

समसार बूझ रही तो सूँ है का केक दिनां म बता द

शादी पिरधा म्हाँ कूँ

का तो बिन पड़े न चैन

बता द टेम सखी समझावे रे ऽ

रंग महल अटारी तो बिन

उड़–उड़ खावे रे ऽ

चौपाई

हो ऽ रथाँ जोत लगा चल दियो

भुआ की गलियाँ पहुँच्यो

हो ऽ वाने अर्जुन कूँ बुलवायो

भईया तो सूँ मिलबा आयो

झोला

हा ऽ रे ऽ (आलाप)

जमुना न्हाबे कूँ चलेगे दोनू भईया

का सबड़ी ख ग्यो

बात भुआ से रोटी कर भैया

दोहा

अ ऽ रे ऽ तो गिरधारी कहन लग्यो

अर्जुन को समझाये।

अ ऽ रे ऽ मटका की चोरी करी तेने

नीच कोम को जाय।।

चौपाई

अ ऽ रे ऽ अर्जुन से खेबे गिरधारी

म्हाको पातक–पातक भारी लाग

याही कहण स म्हारी

अ ऽ रे ऽ स्वामी र बात बता द मोकूँ

थाँको लेखो–लेखो कैसे लेगो

याही बूझ रियो तो सूँ

अ ऽ रे ऽ गीता म बात लिखी सारी

बाको बाचो–बाचो देखो जार

याही कहण स म्हारी

डट्टा नं. 1

अ ऽ रे ऽ तो वे जमना न्हाबे आया,

दोनूँ आपस म बतड़ाया।

याकी शर्त करेगो काँई,

अर्जुन न कर दई नाँई।

अ ऽ रे ऽ तू वीर करे मत नाँई,

दुर्वासा गुरू गवाई।

अब जल म गोता मार क,

पहले निकले बाहर।

ओर शर्त करी गोपाल न,

वा बण सुन्दरी न।।

पद

ओ ऽ धोखा देगो त्रिलोकी

जा बैठ्यो भीतर पाणी म।

ऐ ऽ अर्जुन नारी बणगो,

भरती बीस जवानी म। (र)

झड़ी

कर गयो चोट किशन गिरधारी र,

मेरो नारी को सो हेगो सब वरण,

बणा दी मोसूँ भारी र,

ठाडो बैरी को दीख्यो कति

म्हाँ काँई जँची,

कैसे तो जमारो पूरो होवेगो,

बणाऊँ कुण गेबी कूँ पति,

ओ ऽ डूब रही स कमर दर्द हे र्‌यो स कणियाँ म।
नाते जाबाली हे बड़गी दीख श्राप बड़ी डर म।।

ओ ऽ कदैक याको माथो दुःख कदैक सारो डील

पेट म या काँई गड़बड़ होगी रे ऽ

तो बण गयो पाप मुरारी मो प काँई रे ऽ

तेने धोका देखे सारी उन मान मेरी तेा विपताई रे ऽ

मो प काँई होगी गलती, हो जाव हलकी

बैठ्यो नहीं है तोल, बात होगी अनमोल

तू का सो गो फूटा ढ़ोल, अपराध कियो का

माफी दीज्यो आ

भूमि तो बता द स्थान पिरानी

ज्या म हूँ जाऊँगी समा

चौपाई

अ ऽ रे ऽ गंगा प नारी बाकी नीत काँई लेबा झाँक रे।

लारे जाबाकी भायेली कैया नाटे रे।।

अ ऽ रे ऽ पहला की नारी के बिल्कुल होया न छोरा–छोरी,

तू का बड़ रही बीस बरस की सास म्हारी

बात कतई मत काटे रे

लारे जाबाली आयेली कैया नाटे रे

अ ऽ रे ऽ आगे पीछे देखकर छोरी तो सूँ भर ली हामी।

लठ्ठ पडेला कह रे नपूता हो ली ऐंचा ताणी।।

थारी बात कतई कोन राखूँ रे ऽ

घर को देख्यो भायेला जैसू नाटू रे ऽ

अ ऽ रे ऽ पहलाँ की नारी कर लेगी घर को पूरो धन्धो,

ओर कारो कुमलो नाई धर्यो थारो,

यू न्यू को सो चन्दो

थारी बात सटाटी अत राखूँ रे

चल बैठ जा गधा प दुःख काटू रे

डट्टा नं. 2

अ ऽ रे ऽ अर्जुन बोल मन्दो–मन्दो,

बुरो या नारी को फंदो।

अब अर्जुन जोद्धा रो रियो दिल पे बँधे ना धीर।

ओर किते कुआ म जाय पड़ूँ तेने पूरी करी बलवीर।।

पद

ओ ऽ पहलाँ तेरे गोदणी गुदा ल मूंडे बोलेगी।

थे गिरधर भायेलो सटाटी घुण्डी खोलेगी।।

तेरो सिणगार बणबो चायो भारी रे

हद लाम्बो तो सटाटी लेहंगा लूगड़ी

सेलू ओर साड़ी रे चूड़ा लायो साड़ी दस को, भारी टसको

कौ पैरू चप्पल तैरी बाटा की ऐडी को ढोल, कोन मसको

झोला

परण्यो दूसरी लियायो वाँको घर बसगो

रोजीना को म्हारो छाती कूटो मटगो

बैठी–बैठी मोज कर्याँ जा प्यारी म्हारी गौरी

थारो फंदो छूट गयो या खूब मली स जोड़ी

परण्या धूँ–धूँ–धूँ

पड़ गयो गरब बणी तो वाँसू भारी रे

पण दूसरी लियायो बेईमान बणी तो वाँसू भारी रे

सब करती रोवे तो सखी, या काँई जँची

डील दूखे सब, छोरा–छोरी होवे कब

बाकूँ चन्दा दीखे सब

या म होवगी कैसे, रहूँगी वीते

पूरी बात क ऽ छोटी दोराणी

जापा म लाडू खावेगी किते

चौपाई

हे ऽ रे ऽ (आलाप)

भूलगो कैसे मनमोहन प्यारा मोहे

मनमोहन प्यारा मोहे

विपदा म भारी रो रही

हो तो मा के छोरा तो छोरी ते

म्हारे होया न या तो मझदार पड़ीऽऽऽऽ

डट्टा नं. 3

हे ऽ रे ऽ (आलाप)

ऐसो लो पड्ल्यो भारी नही

को ही गधा चरा बालो

गाली देवे नणदल भाभी

म्हारी सब बुद्ध मुश्किल होगी

रोजीना लड़ाई होवे

बिचारी बैठी–बैठी रोवे

अब नाई पड्यो शोक

बड़ी–लोढ़ी की राऽज म

और गधा चराबे जाय

फट्यो बाको लंहगो साऽन म

पद

मो पे पहलाँई नारी ढ़ोला से तकदीर निकड़ गयो फूटो र

म्हारा कर्मन म को दीखे बालक छोटो र

बाकूँ ल्याबा म शरम नाही आई रे

म्हारा बाड़ा म बूढ़ा सा गधा जोड़ी तो

भेड़ गाय र सुपना म धन जोड्यो

चौड़ा म लिख्यो, दूसरी लियायो छोरा होबे कूँ

हमारी तेरो कछु ना पड्यो

ए, बी, सी, डी, ई, एफ, जी, एच, आई, जे, के, बारह कन्या लाडली

कन्या तो होगी धूँ–धूँ–धूँ

रोव मत नार बगाड्यो तेरो काँई रे

मोकूँ जोरी सूँ ले आयो बईमान करी भारी नाई रे

कैसे तेरो जन्म कटे, छाती को डटे,

करि नहीं गौर, कोई देख ले तो ओर,

अब तो दीखे नाही ढोर, भारी आटो पड़गो,

तू तो पड़गो, कौन छोड़ी कसर सासू–भाभी न

कबाड़ो पूरो सारो करगो

चौपाई

अ र र र म्हासे लड्यो क्यूँ भवानी रे

काँई कर्यो नुकसान धर्म दे ल्यायो नारी रे

हेऽरेऽ (आलाप)

ज्यादा छोरी हो गई म्हाके छोरा भयो न एक

होनहार हलता नही रे ये कर्मन का लेख

नार ढोला से न्यू बतलाई रे

कर दे पीला हाथ बलम कहीं करो सगाई रे

किंया गधा चराब जावे रे

फाट्यो मो प घाघरो शरमाती आवे रे

डट्टा नं. 4

बोल

हेऽरेऽ (आलाप)

वाके बारह हो गई छोरी, जीमे उम्र रह गई थोड़ी

इनको कर दे ब्याव सगाई, नार ढोला से न्यू बतलाई

बूढ़ो हो ग्यो बलम मरेगो, कुण इनको ब्याव करेगो

अब सब विधि से समझा दई तो या सिसोला की बात

ओर कपड़ा लेके पहुँच गई जमना जी के घाँट

पद

ओ पहलाँ ही गेलो को देख्यो हमेशा आती–जाती न

म्हारे दो बर अचकी आई र रोटी खाती नऽऽ

रच दियो खेल मुरारी तेने काँई र, मेरा पाँवन की उतारी रमझोल।

सेलूका और साड़ी रे,

मोकूँ आवे शरम घणी, भारी तो बणी

जुलम करी रे मोसूँ जुलम करी

बतलाँता–बतलाँता देख्या लुगाई न

जुलम करी रघुराई न

सबली कन्या बला लई अर्जुन ने कर ली टेक

तेने नाटक बुरो रच्यो वेदन म पायो लेख

लगा ढब सगली नायी न

जुल्म करी रघुराई न

बैजा–बैजा राऽतौ किशन

मिसकोला र पीली लूगड़ी

किलप तेरा माथा प लटक रिया झोला र

टीका नथ सोना की लड़ी,

चौखी तो पड़ी,

अजमा जावे सब

लेगो लम्बी चौड़ी ढ़ंग

कोई देख लेगो जब

आयो मेरे सड़को

भारी भड़को

बेसोदी तेने को सोसी

किशन कर बैठ्यो कड़को

कन्हैया लोकगीत 3

''पद्मा बाई की कथा''

ओऽरऽ बीसल दे दरबार भूप ने ऐसा मतो उपाये
ओऽरऽ सात सुता लई बुला भूप ने ऐसा वचन सुनाये

पेड़ा बन्दी

आऽरेऽ भूप ने पूछी जब सातों बाई रे
भोजन किसके भाग्य बली से
थम रही तो सटाटी पाई रे
खोल बता मोय भेद बता के

कली – I

हेऽरेऽ सातों सुता बुला भूप ने लईये हका
पूछ रह्यो दरबार बगल में बैठ सटाटी रईये
ख रयी भोजन पिता भाग्य से रही हम पाई रे
बोली मैं किस्मत से खा रही पद्मा बाई रे

कली – II

अ र र र पद्मा बाई ओ बोल ऐसे बना रे
सुनत पिता के लाल गुलाबी हे गे तो दोऊ नैना रे
आँखन देखी नहीं जाय पद्मा रोस बदन में छायो रे
फरवट अपने पास भूप ने पहरेदार बुलाये रे
हे पिताजी! ऐसे बोल रयो

झोला

ओ दरवाजे पे दूत तुम जईयो रे ऽ ऽ
जो काऊ पड़ निजर म उसे पकड़ ले आईयो रे

चौपाई

अऽरेऽ पनघट प पणिहारी बतड़ा रही रे
ऐ जी राजा बीसल दे हे ब वाका महलन के छाजा प बैठ्यो मोर
काकड़ डोरा बँध रहे वाके पेहर में जी
अ र बरना तो बना ही दियो पद्मा बन को मोरिया रे
ये ज्यासे जोड्यो पल्ला हंब याजे काँई तल्ला
हड्दी को तलक याँके बहना मोरी हेर्यो जी

डट्टा नं. 1

ओऽरऽ इत गये दरवाजे पे जब भाक भड़क आये
ओऽरऽ पड़े निजर एक मोर पकड़ राजा को दिखलाये
हेऽरेऽ बुलवाई पद्मा बाई रे भूप ने बरमाला डलवाई रे
हेऽरेऽ मोराँ के ....
ओऽ संग सुआ तो परणाई रे मात ढिंग आग्या लेबा थाँई रे
हेऽरेऽ बाकी जामण न, रे चिपटा लई
बैठी छाती से का तेरे धरी ललाड़ी में
ऐ पद्मा बाई तो समाई देखो रोटी पाणी म
कन्या न जाते–जाते तो दिया रे ऐसा श्राप
मोसे तो काँई लेबे रे
हरामी निर प बाप बणाई ऐसी हेय भरेगो अब थारो रे
पिताजी कैसे पेट भिखारी बण डोलेगो राजा, पावेगो सजा
ओऽरेऽ वासे ख रही ऐसे लाली म्ह तो मोर संग अब चाली माता
हाऽरेऽ तुम्हारी घाली महलन म तेरे आवेगी कंगाली रे
डटे कोऊ धन दौलत नाई रे, कह रही बाई
छोटी मह तो लागू भारी खोटी ल्यारी आव ऐसी ओठी
त्याग चाली पाणी रोटी नाँई होई,
तब तो माने छोड़ तो धरम
मत दीज्यो री शरम ल्यारे हाथ में सुता तो डाट लीज्यो री
बताऊँ बात मीन कीर ही तो नहीं लाडली तू आदमी का दीन की
गैल सीदी दई तो बता, टूटगो नता, सुनो तो कथा चार
चार पहरे हार कर संग म विकट बनी भेज दी।

डट्टा नं. 2

ओऽरऽ विकट बनी के बीच अकेली छोड़ दई पद्मा

ओऽरऽ छिप गयो सूरजभान पहुँच गयो लाली के सदमा

हेऽरेऽ आँधी तो विकट उड्याई रे गगन में भारी तो अँधेरी छाई रे,

हेऽरेऽ सुरपत न ओ–परबत करी तो चढ़ाई रे

घटा तो घनघोर गरजती आई रे

हेऽरेऽ (आलाप)

गोरीधन से तो बण भारी लगईये,

बरसात गजब की म्हाँ बरस रईये

तूफ़ान जोर सो चल आतो गईये रे

विपत न लई तो सुता अब घेर समय के देखो फेर

बिखर बाँके माथे के गयो रे सब बाड़

अकेली गोड्याँ बैठी तो काऊ को नहीं है नाड़

न जाण कैसी परलय तो हाली और काँई तकदीर म घड़

रही सोच विचार निरच्छ के पद्मा बाई गई बैठ तल ड़

होनहार बलवान पेड़ से टूट धरण पे डाल पड़ ड़

करम लेख ना मिटे अचानक पड़तो गजब को गोला

दब डाल तले मर गयो सुता को मोर बलम रंग ढोला रे

उठा तो झट गोदी में लियो रे, भरतार तन तो परलय फाड़ी रे

मोसे तो करतार, प्रकारी गोरी रामजी करी तो काँई

मैं न तेरी चोरी रे

मोकूँ परमाल्या बता

कह तो रहयो का

भारी सी सुता

बेमाता

बेमाता को बैठी काँई दाब म्हेता तोड़ दिया मोर से नता।

डट्टा नं. 3

सात दिना गई बीत सुता न अन्न पाणी नहीं पाये

और पारबती शिवशंकर भोला पद्मा के ढिंग आये ...

होऽरेऽ लिखी तकदीरन की ऽऽऽऽ

बितगी र भी विनय करू कर जोर रे ऽऽऽऽ

म्हारी अलख लिलाड़ी छटी कोई बिछटे गागर मोर रे ऽऽऽऽ

ऐक–सुन तो अरज मोरी लिज्यो

ओ–दोऊ कर जोडूँ करू बिनती रे

विपदा द कर आँगन मोय दी ज्यो रे ––

जला दऊँ मेरो पति, याँके संग में होवगी सती

गिरजा की जब निजर पड़ी, रह गई शिव को छोड़ खड़ी

हाथ जोड़ महादेव पति से पारबती का कह रही है

कह तू संईयाँ देख अच बो या काँई अचरता है रही है

बहोत बार म बात गोवरा की बम्भोला न सेटी

सब कथा सुणा दई खोल उमा को या बिसल की बेटी

बेटी रे सटारी से तो बहणा छः तो

सात पूछी तो सुन या कर पिता न ऐसी बात

रही तो धन कोन क किस्मत से खाये

राजा से वा न येसो तो

कई म्हे तो बैठी खातो मेरे भाग से रही

सुण थाँकी बात किया बाप न तो घात

भेजी मोर क तो साथ

ऐसे बोले भोलानाथ

चल तोय तो का पड़ रही ये

याँक भाग की तो कांही रईये रे

सति ने हाथ जोड़ तो पति से यैसे कह रईये र

बात याँकी राँख द पिया

मान ल किया म्ह तू काँय कूँ

कुवावे मोपे बार–बार

तू तो दरबार ओठा मोड़

नाड़िया कूँ तो लिया

डट्टा नं. 4

और विकट बनी के बीच रचा दई शिव जी न माया ऽऽ

और मोर बणादियो मरद बदल दई वाकी तो काया

हाँऽरेऽमोर को तो मरद बनायो र जना तो वा न मोरागढ़

नगर बसायो रे भारी खुशी छाई तो

ओ सन्यासी को भेस तो हटायो रे

दरस बाकू द`र भोलानाथ बढ़ छायो रे

राणी पद्मा बाई तो रे ———

उड़ा गई न घेहल झुका दईये

रंगमहल ढिगा दिये आगे बेल

लम्बी लईये वा न गेल

रचदियो नगर बन में बात ल्यारी बन सब गईये रे

बता द या म काँई तो कसर अब रह रईये

पलट जाँवा ओठा रे

हेगी तो महेश की हिया म्हाँ शिव पारबती पलट गिया

और उड़ वन भर धन माल खजाना खाई न चाँदी सोना

थोड़े दिन म जन्म्यायों बाके लाला रतन खिलौना रे

कँवर बाई कैसे तो लड़ा तो रही लाड़

सूरत वाकूँ मैयो से

मिलन की उठ्याई र मिलाती खांऊ

पीयर म खूब तो लिखी ये मौज

मेरे तकदीर म राजनीति रही तो चला

चाव तो भला

खाव तो फला

भा – री –

भारी सी कूँ हे गो रे अपट चयन

सुख नारी गोद म खिलावे आड़ो लेर तो लाला

डट्टा नं. 5

ओऽरऽ बिसल दे राजा न करी अनीति कन्या से ऽऽऽऽ

ओऽरऽ लाली दे दई श्राप गरीबी आ गई जन्या से

हेऽरेऽ बिसल दे अन्यायी रे गरीबी वा क द्वारया आई रे

हेऽऽ वा न होली तो ओ कन्द के लिटकाई रे

पहुँच गयो मोरागढ़ के भाई रे लेरे बाकी छोरीन रे

पहचाण पिता अपने कूँ लेबे परबत इत फटाये रेण

हे पेहरेदार तुरन्त जब उने पकड़ कर तो जेना वाके रे

भिखारी सिंगार सुवा तो बाकी दौड़ी–दौड़ी महल म सूँ आई रे

रसोई कर माल म तो बाई घर ल्याई रे

बचन ये से बोल तो सुता

जेल रे गरब रोटी साग तो पिता

बाप कह गयो र सुन बात सदमा

ठाड़ी तो अगाड़ी बैठी–बैठी

पद्मा बाई की सिकल

जाण माई तो गई

या है वा नपूता परण्या मोर क दई

छा गई काणोड़ी देख बाके बाबुल के सोच भयो तो भारी

म्हा रियो जाय मुण्डी या तो कोई

परलय फाराड़ी गोर करी ना ओण्डी रे

शबद ये से बोले तो पिता जी ने

तैने मोय नेहक भी नचायो रे

ऐसो कोई दाग मेरे कुल के लगायो रे

छोड्याई खाँ तू मोर कूँ मे ृन, काऊ अंग तो लगायो नहीं ओर कूँ

चिन्ह दिया शीश प बता

ठाड़ो एक माथे पे किलंगा

एक बा खोल दी कथा

बोली तो सुता

दाड़ रोटी देख मेरे भाग म तो

बैठ खाऊँ जाग म पिता।

कन्हैया लोकगीत 4

'देव जन्म कथा'

एक दिना की बात सती सतवन्ती साडू जल भरबे जावे
और लहरा ले रयो फूल कमल बाकी झोली में आवे

बन्दाल/सुरबन्दो

★ हेऽरऽे ले लियो फूल कली में जन्म देव औतारी रे
सतवन्ती साडू लाड लडाती जावे रे

★ पहुंची रंग महलन में जाए हरि गुण गावे रे
ललना को पालना महलन में झुलाए रे

कली

हेऽरेऽ पैदा होगो तो गोठन म देव अवतारी ह का
थरर थरर थर थरागी गढ राड़न के महल अटारी
टूटी दरवाजा की धजा नगाड़े बाजे रे
बाँका राव को बदन धैला खावे रे

चौपाई

गढ़ का टूट्या तीन कांगरा कांपी रूखा रोती राण सोती
राण्याँ ओझल गयी पलक्यां का टूट्या चारू साल
ठीक पड्यो जब राणा जी को कपटी ब्राह्मण लिये बुलाई
बेगा जाओ गढ़ गोठन म बैरी को देवो सीस उडाई

कली

हेऽरेऽे सुन राणा के बेन विप्र चल दिये ह का
तनक करी नहीं देर डगर म गढ गोठन म
आये साडू सोचकर दिन रात फटे मेरी छाती रे
लिख रही पयर म बाबुल कूँ भेजी पाती रे

चौपाई

हेऽरेऽ पतीया लिख रही बाबुल कूँ सतवन्ती रोज बुलावे रे
बाबुल मेरी सुध ले लीज्यो दुश्मन बहुत सतावे रे

झोला

होऽ पैयर जा रही तो
होऽ पैयर जा रही तो
सतवन्ती सीर पे पालना रे
पहुंची विकट बनी के बीच झुरक रहे नैना रे

डट्टा नं0 1

अरे सोच रही सतवन्ती मन म रे, सोच रही सतवन्ती मन म
दुनिया करेगी मजाक बाई, थारऽ बालो गोदी म
अरे मरूँ म शरमन की मारी रे, मरूँ म शरमन की मारी
और दिल म उठे हिलोर टपक रयो पाणी नैणन म
अरे उतार्‌यो सिर पे से पलना रे, उतार्‌यो वा न सिर प से पलना
विकट बनी के बीच धरयो र, वा न गोदी से ललना
अरे पहुँच गयी साडू पैयर म रे, पहुँच गयी साडू पैयर म
भावज गईये जाण पौंछ रही बासे महलन म
अरे लगायो देही के कालो रे, लगायो तेने देही के कालो
आव दूध की सी बास, दिख र्‌यो दाल म कालो रे
क सांसी कह द तो .....

झड़ी

अरे क साडू बोल छानऽ छानऽ
भावज बात कतई को मानऽ
दिल की बात सटाटी खोल
बाकी भावज से न्यू बोल
म्हेतो चढ़ र पाल प सूँ झाँकी
जद म्हारे धार दूध की डाँकीं

अब एक दिनां की बात गयी जल भरबे सागर म
और ब तो फूल कमल म्हारे आगो झोली म

पद

ओ ख दई मन की बात सटाटी साडू सतवन्ती न
हो मिलगा शिवजी का बरदान बेवड़ा भरती न
नणद म्हारी खां छोड्‌यो नन्दलाल बता दे सोदी न
ए लेरां ले आती बेलखणी वाँकू गोदी म
उमक रयो हिया रे .....
गाजा बाजा सूँ चलेगा सातूँ जात
सकाड प्रभात तड़फ रयो जिया रे
कैसे मन सबर डट कसर घटे
कैसे तो कटे र दिन रात बेटा क बिन छाती सी फटे र

दुबेला

उग बाद सूरज भान चन्दा छुप वाद
घबराव मत साडू माथ चिन्ता मत ल्याव
दिन उगताँई दियो बुलावो र नगरी म ढ़ोल नाई
बतडाव मर्द लुगाई र कर बैठी तो कबडो काँई रे

लगायो डंका ढोल क बुलावो दियो भारी रे
सातूँ जात चलीए दावेदार तमाशो देखो भारी रे
गाती जाव गा गा रे सागा भा भई र मा जाल का
बाड़ा म बैठी नाहरणी छोरा कू लेके बगल लगा

अर कर जोड्या की राख भवानी दिल म उठ हिलोर
थारो हो तू लेजा नहीं तो जा दूसरी ठोर
जंगल की राणी छोड़ चली साडू को प्यारो ललना
गाजा बाजा सूँ उठायो पलना रे
ठाडी विकट बनी के बीच मिलाल्यो साडू न नाहरणी से
मेल बणाई बाकूँ बहण गजब कर डारी रे
चूड़ा रियो कांचली कंगा का काँई र का
दुनिया रही देख यांम काई मीन मेख
न्ह्यासूँ नाहरणी को लेख बाला देव की
कथा ता था थई था तीन जुगा को
दूध छोरा कूँ गई है नाहरणी चुखा

डट्टा नं0 2

अरे तो धीर धीर हो गयी बारह साल,
सुणा दऊ अब आगे का हाल
खेलबा लग्यो गेंद को ख्याल
चौक म साडू को नन्द लाल

अब लग रयो भारी छाव चौक म मांड दियो पालो
और टोरा दियो जमाई महल को जा तोड्यो जालो

पद

ओ गेंद चड्या को ख्याल खेल तो बापोती म रहतो रे
म्हार लाखन को नुकसान आज नहीं हो तो रे
बडू डू हाथी दाँत को चटक गयो चूड़ा र
बालू जालू र भाणूडा थारो गेंद कर तो बदमासी र
न्यासूँ थारी बापोती म जा ख तो रहो का
तोराउयो फोराउयो रंग महल झरोखा खाँ सूँ आयो भडवा र
जा बैठयो बाला देव गोखड सूरज सामी पोली प
बाको बदन गयो कुमलाय उदासी चहरा प
मैया री मोरी साँची तो बता द थारा मन की
बापोती बताद नैवा भडकी
बेटा र म्हारा कुण न तो भर गयो काँई जचगी
खेडा बासबाकी कोन थारी बसकी रे
बडून्डू छोटी मामी न बिगाडी म्हारी जात
गजब की बात बताद मैयो साँची र
नानाजी को छोडूँ बंगला
कर तो सलाह, देवजी की टेक, बात भारी तो विशेष
छोरा मान नहीं एक सारा देख्या
धवला खाव तो कला भारी तो गजब हर
ठानी उतर्यायो साडू मां क अचला

डट्टा नं0 3

अरे मैयो र मोरी जाबा द गोठन म लऊँगो बदला
अरे बांका राव की राणी को बेज्यां कजला रे
छोड़ूँ नहीं जागो तो दुष्ट बरधाम उडादऊँ नो तेरा की
राण मचा दऊँ भारी तो घमसाण क छोचू लियो भाट कू बुला

वीणा तो बजा

ओ चौबीसन को भाट मालव वीणा ताल बजावे रे
मैं बाकू जाण गयी भवानी दौड़ी आवे रे
छोड दई मीठी चुपड़ी राग भाट न गई या लई
बुलाई सटाटी गढ़ गोठन कूँ जावे रे
नगलिया प सवारी बाला देव की गजब प्यारी लागे रे
सग नग सगाक सा उगांक डार
मीठा मालवा सूँ चाल्यो बाला देव गेला म
भारी गरद उड
रथलाँ म तो बैठी साडू मात हरि का गुण गान करे
आग सप्राजी बव दावा सोर बरखा सो भारी सोर कर रे
ताण दिये तम्बू खेतन म .....

काडी सी घटा म पिडी धमणी चमक धम
अड अड धम होती आव एक दम
मेगा छाव तो सगा सग नीर चंढ
पाणी तो पड सीड़ी चल रही पवन बर्फ भारी जोर सूं पड़

डट्टा नं0 4

चौपाई

अर देवी पूजा काज साडू माथ थाल सजाव र
मेवा और पकवान मीठाई फूलन माला लयाव र
बोतल पी पी मजा र उडाव मदीरा तुरत मँगाई र
पूजा कर रहे भेप गोठिया डम डम डमकी बाज रे

हेरे पूजा तो हे रही देवी मात की
अरे भवन म चण्डी लहरे
अरेक देवी मैया भई र चण्डी मैया, ओ सोच रही मन म
धर लियो असली रूप जती को शंख बजे
मण्डन म धर धर धूजतो मात चरणन् म
देवी अब देख ल मजा आ गयी कजा

पद

ए देवी मैया तो, ओ चण्डी मैया तो गई र घबराई लोठा क पान पड गई ये
बाकी काया क ओ पत्थर माया क जमाई रे पंचो लात अ पट
दूख पतो रही रे
नाडो नाडो होव तो दूध पाणी देव गजब
बोल वाणी रे माया बाकी जाणी रे जयसिंह देखी आई तो सुता

दुख म दया

देवी क लगायो बा न ढोक दरस बाकू दियो तो बता र
अजगर पर बैठयो पायो र या ग्यारा कला औतारी
या न जन्म सुधारयो म्हारो र बन जाऊँ याँकी
घरवाली म्हारा गरडा मट गया नैनण का
पीपल देख खड़ी खड़ी र
मिल्यो तो नाही जोडी को बरना
महाँ सूँ चाली गेल म जा पहुँची रंग महल
मिले तो गया बेटी खई ये भूप से सटेटी बाला
देव की कथा

ध्यान से जचां

महतो रे सगाई कर आई देव संग बाई से तो खाऊँगो भँवरिया
फरवट लगन लखाई रे भूप न बट तो पतासा घुघरिया रे
बणादी लाडी तेल दियो बाई प चण्डा खीर म कचोरी
लयाओ पान सुपारी मीठा तेल की सटेली पुआ पापड़ी
गठरिया सगम सगा भा भई र भा

गा गई र गा

खिलतो कमल को सौ फूल महल म
डलिया हिलरई डिगम डिगा

डट्टा नं0 5

हेरे हेरई तो निकासी बाला देव की
हरे नगर म होले धीरे .....
बामण बणिया सबड़ी दुनिया
कर सोलह सिंगार क सखीया
हरे नथ लिया भई र नथलिया
होटन प डलक .....
मुख म नागर पान दांत बांके बतीसू दमक रे
पेर लिये गुली बन्द गजरे
हाथ म रचाई महन्दी राचणी
हमेल पेरी चांदी को सो पोंच हथ फूल कणकती कणिया म
काडतो कसीदा गौरी फरी या म
ओ देवतो हुकम राजा आंव दुनिया सारी
ओ पोली प कर तो बेगी तोरण की तैयारी ओ तयारी करी बाने .....
गाव तो बदावा गारी गीत अधर चण्ड देखतो अटारी दूल्ह ठाडो
तो अगाडी नर नारी तो मुकट प धिलक पड

चंवर ढूल बे दि

बेदि प बिराज बाला देव पिपल दे संग भंवर पड

कन्हैया लोकगीत 5

द्रोपती चीर हरण

हे ऽ रे ऽ (आलाप)

एक समय की बात द्रोपती मन म मतो उपायो।
ओर सखियाँ ले लयी लार न्हाबो गंगा को मन भायो।।

हे ऽ रे ऽ (आलाप)

जुड़मल जा रही सखि सहेली बेल अलबेली रे
मार्ग में कामण मंगल गाती जावे रे ....।

झड़ी

हे ऽ रे ऽ (आलाप)

दुर्भासा अपने नित कर्म को बो घाँटन प जावे,
कछु होनहार की बात लंगोटी गंगा म ही बे जावे,
ठाडो राम सुमर रियो खूब लगायो जाडो रे,
कस्ता पड़े बदन प भजन करे वा गाडो रे।

चौपाई

अरे क ठाडो द्रोपद राजकुमारी सोच मन में करे विचार,
या बाबा प दुख अपार बूजुं जार पल छिन म,
पतो तो लगायो याँ को मनटिन में।

पेड़ाबन्दी

अरे ये दुर्भासा ठाडो जल म कर रयो हेरा
या गंगा को निर्मल पानी भारो, नीरघनेरा,

मो संग धोका हेगो जुल्म गुजरगो भारो रे..ऽऽ
बार कडूँ बदन तब दिख मेरो सारो रे..ऽऽ

झोला

सुणताँई फाड़ उतारी वा न सिर की साड़ी रे
बरदानी देगो तेरी साँई करे बा गिरधारी...ऽऽ

दोहा

अरे तो अब आगे के चरित्र को सुनो सजन दे ध्यान।
और श्री कृष्ण भगवान देख रयो शीशमहल की श्यान।।

चौपाई

1– अर बनवारी सोभा भारी प्यारी .....होऽऽ
यां का जंगला मं .... लग रही न्यारी फूल किवाड़ी सा

2– अर मन प्यारा शीशा म हाथ पसार्या हो .....
बां की अंगुली .... कट गई आज खून फुंवारा सा

डट्टा नं0 1

बोल

अरे ऽऽ ... राधा राणी न, ओ रूकमण प्यारी न
पिटारी खोली जार द्रोपत न साड़ी फाड़ दयी रे,
समझ गयो दीनबन्दु गिरधारी रे, लार भगतन संग नचाव
नर नारी रे, लार नाच ता ता थै था धीरे–धीरे गा,
भीड़ पड़े भगतन प देव सब दुख मिटा,
दुख जी क पीर नहीं है द्रोपती क बीर,
या अबला की बात देखे न्यास या अखीर
करज्यो गोर सभा म म्हारा भाई रे,
या दुर्भासा की बात मिले तो देखो न्याही रे
या म मत ल्याज्यो जाडो कर मन गाडो भगती में भगवान
बस पाव ठाडो।

चौपाई

1– पाण्डुवन ने यज्ञ रचायो जा म कोरव लिये बुलाय,
भाई बन्दी में चल कटोती परम्परा सूँ चलती आय।

2– अर श्री कृष्ण न दुर्योधन को बा म भण्डारी दियो बनाये
एक उठाव बढ चोगुणा या रयो परमाण बताई।

डट्टा नं0 2

पद

अब अर्जुन येसे कहरयो सुन मेरी भ्राता बात।
ओ महल दिखाल्या आपणो तो तू ले जा इनको साथ।।

ओ काचन का बंगला मं लग रही फूल किवांड़ी न्यारी रे
ये – ये सोभा शीश महल की लागे भारी प्यारी रे

झड़ी

द्रोपत सुनत बचन उठ धाई रे, वा कर सोला सिंगार
महल म सूँ आई रे, वा न कर दियो कड़का, बेरी दियो भड़का,
सोची नहीं कछु बात झरोका म पहले बेठी जार,

देख्यो दुर्योधन या मन म कर विचार पार कछु नहीं पायो,
आग दरवाजो ज्याम खुल्ला मिल किवाड़ आला म पग पड़ जाव रे
हंस गयी माह पाचन की नारी रे, बा न दे दियो धुर को डाव
क जात बगाड़ी रे, या न खह दयी बात कड़ी, बुरी घड़ी
तु आँधा को अंश काँई डोल रे, निसंग न्याँसू बिजलो पड़,
आग पड़, रिस खागो नेनण में ढोरा सुरक पड़।

चौपाई

1– अरे पाप या दुर्योधन क छायो र छायो र,
मामो लियो बुलाय महल म न्यूँ बतड़ायो रे।

2– ये ... र इन बातन की गेल बता द सुन र मामा म्हारी
या न अत्याचारी धारी रे, धारी रे,
इन बातन की गेल बता मो स हे गई भारी रे।

डट्टा नं0 3

पद

अब सुखनी सालो कह रयो सुन जीजा मेरी बात
ओर फरज निभावो आपको द बेटा कूँ साथ।

ओ ममता पूरी हे ज्यागी बेटा कुं खेल खलाबा सूं,
काँई कुँ मना कर मान न मारो कहबा सूं रे

झड़ी

देखूँगो थारा वीर बड़ा बलशाली रे, जब हथीनापुर के बीच
बजगी भारी ताली रे, या म नहीं है राजा की सलाह,
खाव तो कला, बईमानी की चाल सकुनी रियो चला
नहीं समझयो समझाबा म रूपग्यो र, राड़ बड़ा बाप
जाल बछायो चौड़ा म बुलवाया

जाल बछायो चौड़ा म बुलवाया

पांडव दोड़ा म
तड़क रयो अर्जन सो बलधारी रे, बाबा ख द सांची बात
बता द मोकुँ सारी रे, थारो दियो हुकम बजा, जैसूँ आ गयो बता
कोन को दबाव या को द द र जवाब, आपाँ दोनुई चला,
लेव कोण की सला, बा बेरी को गर्व
गराद्यूँ रण खेतन म धरू हला।

डट्टा नं0 4

बोल

अब खेल जबी पूरो भयो होय पाण्डवन की हार,
ओर दुर्योधन क दिल में छा गयी भीतर खुशी अपार।

पद

ओ पाँचव पाण्डु पड़े सोच म कोय न धीर बंधावे रे,
वे मामा सकुनी न गजब प्रलय फाड़ी रे।।

झड़ी

हुकम जब दुसासन कु दियो रे, पाँचाली का पकड़ल्या
केस सभा म बेगो ले आ रे, देर या म काँई कुँ करे
मेरे मन न्यूँ भर, शीशमहल म जात बगाड़ी बे बातन
की आग पड़े

जा पूँच्यो अन्याय भारी मर्म कटे

तू तो म्हार लार चाल मोसूँ काँई कु नटे,

सुणताँई बात बाकी छाती सी फट र

म्ह तो रास सभा म जाऊँ म्हारो धर्म घट,

सुणताँई बात बाकी छाती सी फट र,

झपट गयो नीच दुष्ट बलधारी रे

द्रोपदी के पकड़े केश घसड़े वाँकू भारी रे पाछ ल्यायो

राजसभा, आज की हवा, भीष्म कूँ रही देख, कजला की

बेगी रेख ठाडी धन अबला बैव कजला,

आज दुष्ट न भरी ओ सभा म फाडाड्ये बदला।

डट्टा नं0 5

बोल

हे ऽ रे ऽ दुरपद सुता पुकारे नन्द दुलारे,
हे ऽ रे ऽ म्हारी भरी सभा म बेगो आरे।
हो भीष्म पिता गरू द्रोणाचार्य सब क आज अगाड़ी तो,
ओ जा रही लाज हमारी तो स्वामी बेगो आ गिरधारी तो
गज ओर ग्राही लड़ जल भीतर डूबत गज को त्यारे तो,
खम्भ फाड़ नरसिंह रूप धर हरणाकुश को मार्यो तो, रे
पधारो स्वामी ..... हॉ रे पधारो स्वामी भगतन का हितकारी
या तो रे गजब कर डारी रे, दुहशासन भरी सभा क बीच,
द्वारकाधीश विपत में कोण धणी, बुरी बणी, तेरो तो
भरोसो भगतन कूँ बेगो आजा श्याम धणी ....।

ओ हो हतनापुर क बिच द्रोपत हरि को ध्यान लगाव रे, नैया
डगमग होय नाथ मेरी पार लगाजा सांवरिया ....

झड़ी

हरे नाथ क नेनण बरस नीर बंद नहीं धीर सुणगो मेरी तो,
जगदीश बड़ा र हतनापुर के बिच नैया डगमग होय नाथ
मेरी पार लगा जा सांवरिया रे, अरज सुन या दुखयारी की ...
काली–पीली – काली–पीली घटा उठ घनघोर बदन म चमक
रही बिजली सी अम्बर म, टेर तो लगाव देखो भारी दुःख पाव
जैसूं भापड़ी कुवाव श्याम द्वारका सूँ आव बाकूँ धीर तो
बन्धाव रथ दियो तो खगा सा रे ग म सा

दुबेला

आ पहुंच्यो बाको स्वामी हतनापुर के बिच चाली फूलचड़ी–2
हो थक गयो बल बेरी खेंचत–खेंचत वीर सभा में बुरी बणी
भारी या सूँ बजा बागी

झड़ी

उदासी जा क चेरन प रही छाय दस हजार गज बल कूँ तोड्यो
घट्यो न दस गज चीर बँधायी बाकू धीर,
श्याम की अजब कला, लेगो तो मजा, अपने
जन की लाज बचा लयी ताल कट न बज तबला

अध्याय सप्तम्

- जनजातीय लोकगायकी : कन्हैया से सम्बन्धित विभिन्न समूहों की गायकी के प्रकारों का विवरण (ऑडियो–वीडियो के माध्यम से)

अध्याय सप्तम्

जनजातीय लोकगायकी : कन्हैया से सम्बन्धित विभिन्न समूहों की गायकी के प्रकारों का विवरण (ऑडियो – विडियो के माध्यम से)

अध्याय अष्ठम्

उपसंहार

अध्याय अष्ठम्

उपसंहार

जनजीवन के बाहर मनुष्य का कोई भी कार्य नहीं हो सकता, जनजीवन से मनुष्य सब कुछ प्राप्त करता है। मनुष्य संस्कृति, कला, आचार–विचार, सामाजिकता सभी जनसमूह से अर्जित करता है चाहे आदिम समाज हो या लोक समाज। जनसमूह के बिना अकेले जीवन की संभावना नहीं हो सकती।

यह विश्व अनेक संस्कृतियों और उपसंस्कृतियों से निर्मित है। संस्कृति, कला और साहित्य के निर्माण में जितना हाथ स्वयं मानव की भीतरी प्रकृति का है, उतना ही हाथ उसके बाहरी परिवेश का भी है। मूलतः यह परिवेश प्रकृति की ही देन है तथा कलाओं का जन्म भी परिवेश विशेष में ही होता है।

संस्कृति मानव समाज का निर्माण करती है, साहित्य ज्ञान को संचित करता है और कला ज्ञान–विज्ञान के साथ आनंद को रचती है। संस्कृति आचरण में संकलित होती है। साहित्य और कला स्वर, शब्द और शिल्प में संरक्षित होते हैं। भाषा इसका सबसे बड़ा आधार है और नृत्य–नाट्य–संगीत इसका आश्रय है।

ये सब जीवन का अंग बनकर उसके साथ प्रचारित होने वाले संसाधन हैं ये सब अपरा प्रकृति के मूलाधारों, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश से बने होते हैं। वैसे सारी सृष्टि इन मूलाधारों से निर्मत होती है उसमें से जीवन भी एक है, मनुष्य भी है और मनुष्य से उपजी कलाएँ भी हैं। जब इनको जीवन से अलग करके कला का दर्जा दिया गया, तब कलाओं के संरक्षण, प्रलेखन, दस्तावेजीकरण और प्रदर्शन की आवश्यकता प्रतीत हुई अन्यथा अतीत में ऐसी कलाएँ जीवन का हिस्सा रही है।

लोक संगीत का प्राण तत्व 'रस' है। नीरस जीवन को सरस बनाने, श्रम की थकान से मुक्ति पाने, जिन्दगी की हताशा को उल्लास में परिवर्तित करने के लिए ही लोकसंगीत प्रस्फुटित हुआ है।

राजस्थान के जनजातीय लोकसंगीत में प्रायः रसों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति होती है परन्तु 'श्रृंगार रस' की इनमें प्रधानता देखी जा सकती है। लोक जीवन से ऊपजी, लोक कवि की कल्पना, प्रकृति और अपने परिवेश से जो बिम्ब या रूप प्रस्तुत होते हैं वे सजीव, मार्मिक और आत्मिक लगते हैं। प्रदेश के सवाई माधोपुर जिले की जनजाति (मीणा) स्वभावतः श्रमप्रिय तथा लड़ाकू प्रवृत्ति की मानी जाती रही है और इसी कारण इनके लोकजीवन में 'वीर रस' का अभाव नहीं है। वीर रस के साथ–साथ 'करूण रस', 'वात्सल्य रस' तथा 'भक्ति रस' की झलक भी इनके लोकसंगीत में दिखाई देती है।

आदिवासी लोकसंगीत के शिल्प में समय के साथ–साथ विकास एवं परिवर्तन देखने को मिलता है। इनके लोक संगीत में प्रकृति की स्वच्छन्दता, धरती की सुगन्ध, विश्वासों की सहजता, भावों की उन्मुक्तता एवं जीवन का उल्लास सभी कुछ देखने को मिलता है। लोकसंगीत इनके जीवन की अभिव्यक्ति है अतः उसे संगीत से अलग करके नहीं देखा जा सकता।

प्रस्तुत शोध का सीधा–सीधा अभिप्राय जनजातीय जनजीवन में रचे–बसे लोकसंगीत की विभिन्न गायन शैलियों की जानकारी एकत्रित कर 'कन्हैया' गायकी की वर्तमान स्थिति को प्रस्तुत किया गया है। इसके लिए इनके लोकजीवन की प्रकृति, रीति–रिवाज, तीज–त्यौहार, आदर्श, विश्वास, मूल्य, आस्थाऐं एवं परम्पराऐं आदि का पूर्ण परिचय प्राप्त कर जनजातीय लोकसंगीत के मर्म को समझने की कोशिश की गई है तथा जनजातीय लोकसंगीत के अन्तर्गत आने वाली विधाओं की तुलना करने के लिए समाजशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक एवं साहित्यिक दृष्टिकोण उपयोग में लिए गए हैं।

लोकसंगीत में केवल मात्र कल्पना का पुट नहीं होता, अपितु समुदाय के समस्त जीवन पद्धति की अभिव्यक्ति होती है। प्रस्तुत शोध जनजातीय लोकसंगीत के आधार पर जनजातीय जीवन के अन्तः एवं बाह्य जगत का स्वरबद्ध एक ऐसा आलेख है जिसमें उसका विगत पुर्नजीवित हुआ है और वर्तमान मुखरित होने के साथ भविष्य की ओर उन्मुख होता हुआ परिलक्षित हो रहा है। जनजाति के विकास की गति, दिशा, सामाजिक, आर्थिक क्षेत्र में उसकी जय–पराजय के उतार–चढ़ाव, अतीत से लेकर वर्तमान तक सभी उसके लोकसंगीत में सुरक्षित है। जनजातीय लोक संगीत के साहित्य में अनुप्रास, उपमा, यमक, पुनरावृत्ति आदि अलंकारों की प्रधानता देखी जा सकती है जिनका प्रयोग स्वाभाविक रूप में हुआ है। इनमें अर्थ की अपेक्षा शब्दों का अधिक महत्व देखा जा सकता है। यही कारण है कि सर्वाधिक अनुप्रास अलंकार की प्रयुक्ति प्रमुखतः हुई है।

राजस्थान के भाषा विज्ञानी मोतीलाल मेररिया के अनुसार, ''राजस्थानी भाषा की लोक रूपरेखा'' के अनुसार ढूँढाड़ी का जो रूप अभी सवाई माधोपुर में प्रचलन में है वही ढूँढाड़ी भाषा का वास्तविक स्वरूप है।''

जनजातीय लोकगीत लोक परम्परा के जीवन की पूँजी रहे हैं इनमें जनमानस के विविध लोकचित्र प्रस्तुत होते हैं। हास्य, रूदन, उल्लास, विषाद, करूणा, श्रृंगार, भक्ति, वात्सल्य की भावनाओं का मार्मिक चित्रण अर्थात् लोक जीवन के प्रत्येक पक्ष की अभिव्यक्ति इनके लोकगीतों में देखने को मिलती है।

चूंकि राजस्थान में जनजाति के जीवनयापन का प्रमुख साधन कृषि रहा है और कृषि के लिए संयुक्त परिवार का होना आवश्यक है। वर्तमान में भी संयुक्त परिवार की परम्परा इन लोगों में दिखाई देती है और यहीं से सामूहिकता की भावना इन लोगो में पल्लवित हुई होगी।

आदिवासियों के लोकगीत 'लय' और 'ताल' में सामूहिक रूप से गाये जाते रहे हैं और इनमें जब नृत्य होता है तब लय और ताल का साम्य अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होता है। लोकजीवन के प्रत्येक पक्ष की अभिव्यक्ति इनके संस्कार सम्बन्धी लोकगीतों में हिन्दु धर्म–शास्त्रों के अनुसार निर्दिष्ट सोलह संस्कारों के अनुसार ही वर्तमान में देखे जा सकते हैं। संस्कारों के लोकगीतों में एक विशेषता यह दिखाई देती है कि कन्या पक्ष के बहुत से गीत, वर पक्ष के गीतों से नहीं मिलते।

सवाई माधोपुर क्षेत्र के जनजातीय समूह के लोकजीवन में वर्तमान में विभिन्न प्रकार के लोकगीतों का प्रचलन भी देखने को मिलता है जो इनके संस्कारों, व्यवसायों, धार्मिक आस्थाओं को प्रस्तुत करते हैं। ये गीत निम्नलिखित प्रकार के होते हैं।

1. चरवाहे गीत –

आयो आयो रे चौमासो
कुण चरासी रेवडियो?
कुण चरासी म्हारी गाय?
कठे चरासी म्हारी गाय?
कठे चरासी म्हारा रेवडियो?
सुसरो चराये रेवडियो,
देवर चराये म्हारी गाय,
डूँगरिया चरे म्हारी गाय,
खेताँ म्हारी गाय
– पदमा मीणा, आयु 35 वर्ष, (दुब्बी बनास) से सुनकर लिपिबद्ध किया गया।

2. चक्की गीत –

गंगा जी कोकिल मोय हर मिला दे, हो – राम
तू तो सीता बावड़ी अब हर कहाँ सूँ आय? हो – राम
जनम धरेगी दूसरो हर वहाँ मिलेगो। हो – राम
जामिण के जनमी अकेली बीरा कहाँ सूँ आय? हो – राम
सासू के जनम्यो ऐकलो देवर कहाँ सूँ आय? हो – राम
खेत म बोये जौ अर चणा गेहूँ कहाँ सूँ आय? हो – राम
खेत म बोये खैर, बबूल चन्दन कहाँ सूँ आय? हो – राम
– श्रीमती गुलकन्दी बाई, आयु 45 वर्ष, (श्यामोता) से सुनकर लिपिबद्ध किया गया।

3. पणिहारी गीत –

पणिहारी पाणी भरण चाली रे।

कौण खुदायो कुँओ, बावड़ी? कौण खुदाई लम्बी काड़?

सुसरो खुदायो कुँओ, बावड़ी, बसती खुदाई लम्बी काड़।

कौण ने गुँथाई थारी चूमड़ी, कौण न बटाई लम्बी नेज?

देवर गुँथाई म्हारी चूमड़ी, जेठ न बटाई लाम्बी नेज।

– श्रीमति ललिता देवी, उम्र 38 वर्ष, (खाट) से सुनकर लिपिबद्ध किया गया।

4. लावणी गीत –

सास–बहु म्हें चाली खेताँ, लेती दाँतड्याँ हाथ,

म्हारो साहब बणावे बणाई झूँपड़ी।

सासू जी तो पूड़ा काट्या, कोई म्हें काट्या सर पे पचास,

ऊँटा–ऊँटा पूड़ा ढोया, सर तो गाड़ा में माय।

म्हारो परण्यो छायी तीरणी,

म्हारो देवरियो गूँथ्यो बात

सास बहु मिल तो ढोल्यो

म्हें मल लीप्यो, लीप्यो सारो पाल

आ झूँपड़ी म्हारो मल्यिो मैल जी, बणाई झूँपड़ी।

– केसर बाई, आयु 36 वर्ष, (तारणपुर) से सुनकर लिपिबद्ध किया गया।

5. वर्षा आगमन गीत –

रंग बादड़ी रे छा रही चारू मेर,

रंग बादड़ी रे छा रही चारू मेर,

म्हारा सूखा हिवड़ा सिरसा आज्य,

सुरंगी रूत आई म्हारे देश।

– गोमती देवी, आयु 55 वर्ष, (भाडोति) से सुनकर लिपिबद्ध किया गया।

6. फसल गीत –

कठै बोयो बाजरो? कठै बोई ज्वार?

डगर बोयो बाजरो, खेतां बोई ज्वार।

काँई सूँ बोयो बाजरो? काँई सूँ बोई ज्वार?

हड़ सूँ बोयो बाजरो, कूण्डी सूँ बोई ज्वार।

काँई सूँ नींद्यो बाजरो? काँई सूँ नींदी ज्वार?

खुरपा सूँ नींद्यो बाजरो, कैंची सूँ नींदी ज्वार।

– गोलमा देवी, आयु 40 वर्ष, (बिलौणा) से सुनकर लिपिबद्ध किया गया।

7. तीर्थ यात्राओं के गीत –

बद्रीनाथ की गैल में रथ सोना रो ठाड़ो हो राम!
चलो री सखी वाकूँ देखबा बामे काँई–काँई रचना होय।
राम बैठ्या, लक्ष्मण–बैठ्या राम बिराज्या, हो राम!
राम तो लक्ष्मण दोनूँ भैया, गंगा भी नहाया।
गोमती भी नहाया, संहसर धारा भी नहाया, हो राम!
न्हाय लिया दोनूँ भैया, वे तो वंशी बजावै मौज की, हो राम!
बद्रीनाथ की गैल में रथ .....

– उगन्ती बाई, उम्र 50 वर्ष, (सारसोप) से सुनकर लिपिबद्ध किया गया।

8. झूला गीत –

सात सहेली मल झूले री झूले।
काहे मे झूला री मेल्यो?
झूला मेल्यो नीमन डार।
काहे की री पटरी डोर?
रेशम डोर चन्दण री पटरी।
सात सहेली मल झूले री झूले।
बड़ को रे डाल्ड़ो बरखणो
पीपड़ की लफणी डार
झूलो तो टूट्यो भापड़ी को
नथली अटकी डार
सात सहेली मल झूले री झूले

– फोरन्ती बाई, उम्र 28 वर्ष, (मैनपुरा) से सुनकर लिपिबद्ध किया गया।

9. गर्भावस्था का गीत –

पेहलो मास जच्चा धन लाग्यो, थूक तड़े मन जाय
दूजा मास बहु धन लाग्यो, मीठा न मन जाय
आगल्यो मास गौरी धन लाग्यो, केड़ा–नारंग्या मन जाय
चौथो मास गौरी धन लाग्यो, आमा नींबू मन जाय
पाँचों मास धन लाग्यो, गुड़–खांडा मन जाय
छठो मास बहुधन लाग्यो, खीर–खांडा माय धन मन जाय
सातो मास गौरी धन लाग्यो, दूध–दही खावण मन जाय
आठो मास बहु ने लाग्यो, पीड़ा में धन मन जाय
नुवों मास गौरी धन लाग्यो, ओखरिये मन जाय

– लाली बाई, उम्र 36 वर्ष, जौंला से सुनकर लिपिबद्ध किया गया।

10. पुत्र जन्म पर बधाई गीत –

हट लागी नणदल बाई पोमचो
थाँकी बेटी ने ल्यो समझाय,
हट लागी नणदल बाई पोमचो।
तू तो दे दे बहुड़ी पोमचो,
थाने ओर मँगा द्यों मेंहगो मोल को।
थे तो या ल्यो बाई जी म्हारो पोमचो,
थे तो ओरूँ मत ओज्यो म्हारे बारणे।
– कमली बाई, उम्र 38 वर्ष, (अलूदा) से सुनकर लिपिबद्ध किया गया।

11. मुण्डन संस्कार के गीत –

बाबा दयाल जी गहरो सुरंगो फूल गुलाब रो
चांवड़ राँदू ऊजड़े बाबा दयाल जी
पापड्याँ बिलावाँ लब झब जी
तीमड़ तीस बत्तीस बाबा दयाल जी
– कजोड़ी देवी, उम्र 42 वर्ष, (बौंली) से सुनकर लिपिबद्ध किया गया।

12. विवाह गीत – इन गीतों में शादी/विवाह से सम्बन्धित प्रत्येक रीति–रिवाज से जुड़े लोकगीतों को गाते हुए देखा व सुना जा सकता है जो सभ्य समाज से अलग ही शैली में गाये जाते हैं। ये गीत निम्न प्रकार के होते हैं –

i. विनायक स्थापना –

म्हाके पधारो जी बिन्दायक
थोड़े घोड़ा चढ़ो जी बिन्दायक
कर थोड़ो सिणगार
पीड़े घोड़े चढ़ो जी बिन्दायक
कर पीड़ो सिणगार
पाछली पछीत बैठो जी बिन्दायक
सिद्ध–सिद्ध का दाता जीवनदायक
थे तो म्हाके भला ही बिराज्या जी
रिद्ध–सिद्ध का दातार
म्हाके पधारो जी .....
– शर्मिला, उम्र 40 वर्ष, सून्दरी से सुनकर लिपिबद्ध किया गया।

ii. लग्न के गीत –

कोठ्याँ सूँ आयो टीको?

थारी दादी राणी बूजे?

थारी बुआ बूजे?

कोठ्याँ सू आयो टीका में रूपिया–नारेड़?

खिरनी गाँव सूँ आयो नारेड़

म्हारी झाला राणी

– धापा बाई, उम्र 56 वर्ष, (कोड्याई) से सुनकर लिपिबद्ध किया गया।

iii. तेल के गीत –

बन्ना जी थाने तेल चढ़ाऊँ म्हारा राजा जी,

राई वर बन्ना प्यारा तनै तेल चढ़ावा

भाया पूरी ने तेल चढ़ेईयो

देवर पूरी ने तेल चढ़ेईयो

बन्ना जी थाने .....

– रसाली बाई, उम्र 30 वर्ष, (घाँटा नैनवाड़ी) से सुनकर लिपिबद्ध किया गया।

iv. भात के गीत –

गाड़ी ढड़कत आई रे म्हारो बाबो आयो भातई

गाड़ी ढड़कत आई रे म्हारो दादो आयो भातई

बाबो काँई–काँई धन लायो रे?

दादी सासू दे च ओलम्बो।

दादो काँई–काँई धन लायो रे?

सासू दे च ओलम्बो।

– रामनिवासी, उम्र 54 वर्ष, (पीपल्दा) से सुनकर लिपिबद्ध किया गया।

v. निकासी के गीत –

छोड़ो छोड़ो री जीजी म्हारी घोड़ी की लगाम

ओ री जाऊँ जीजी रस बदड़ी घर ल्याऊँ

छोड़ो छोड़ो री काकी म्हारी घोड़ी की लगाम

ओ री जाऊँ काकी रस बदड़ी घर ल्याऊँ

– रूपवती देवी, उम्र 43 वर्ष, (मलारणा चौड़) से सुनकर लिपिबद्ध किया गया।

vi. आगोणी/तोरण के गीत –

चरत्यो भरत्यो साथ में, तोरण मार्‌यो रात में
बोल र लाड़ा कुँण–कुँण थारी बारात में?
क्यूँ र लाड़ा एकलोई क्यूँ आयो?
थारी माँई ने लारे क्यूँ कोनी लायो?
क्यूँ र लाड़ा एकलोई क्यूँ आयो?
थारी बेहण्या न लारे क्यूँ कोनी लायो?
– उगन्ती देवी, उम्र 48 वर्ष, (उकलाना) से सुनकर लिपिबद्ध किया गया।

vii. विदाई गीत –

बनखण्ड की ए कोयल
बनखण्ड छोड़ कठे चाली रे?
थारा बाग ने बाग लगायो ए बनड़ी
थारे बिन कुण सींचेगो?
– गुलबाई, उम्र 40 वर्ष, (कूण्डली नदी) से सुनकर लिपिबद्ध किया गया।

viii. गौणा के गीत –

ओ रे छोरा सुन्दार के बेसर गढ़ा मोय,
मेरे गौना के रहेंगे दिन चार
ओ रे छोरा बजाज के साड़ी लादे मोय,
गौना के रहेंगे दिन चार
ओ रे छोरा रंगरेज के चुनरिया तो रंग दे मोय,
मेरे गौना के रहेंगे दिन चार

– छोटी देवी, उम्र 56 वर्ष, (आदलवाड़ा) से सुनकर लिपिबद्ध किया गया।

उपरोक्त लोकगीतों में मांगलिक एवं धार्मिक अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों में सहज एवं सरल जीवन की अभिव्यक्ति होती है। इनके सरल जीवन को लोकसंगीत में सर्वत्र देखा जा सकता है। सगाई, विवाह, भात जैसे अवसरों पर गाए जाने वाले लोकगीतों में जनजातीय भाषा के साथ इनकी परम्पराओं का परिचय भी मिलता है।

राजस्थान में सवाई माधोपुर अंचल लोकगीतों की अक्षय निधि को अपने में आज भी छिपाये हुए है। श्रृंगार से लेकर शांत सभी रसों का जनजातीय लोकगीतों में प्रचलन देखा जा सकता है। इनके लोकगीतों की संवेदनशीलता, भाव वैभव, कलात्मकता के साथ मार्मिकता सभी कुछ प्रभावी है और इनमें क्षेत्र की जनजातीय संस्कृति सहज रूप से मुखरित हो उठती है।

धार्मिक भावनाओं से ओत–प्रोत होने के कारण अनेक देवी–देवताओं की उपासना इनमें देखने को मिलती है तथा लोकदेवताओं एवं अंधविश्वासों की इनमें आज भी कोई कमी नहीं है। धार्मिक समन्वय की भावना के कारण हिन्दु धर्म के लोक देवी–देवताओं, जैसे – गणेश जी, हनुमान जी, भैरू जी, शिव जी, खेतरपाल जी, लक्ष्मी जी आदि के प्रति विश्वास इनमें देखने को मिलता है।

'डाकन मारे भूत पछाड़े' जैसे गीतों से इनके अंधविश्वास तथा 'पीर मना ले गढ़ अजमेर को, जाकू ध्यावे दोनू दीन' जैसे गीतों से इनकी धार्मिक समन्वयता परिलक्षित होती दिखाई देती है।

लोकसंगीत जनजाति के जीवन का अभिन्न अंग रहा है और इसके बिना इनके लोकजीवन की कल्पना करना असम्भव सा प्रतीत होता है।

प्रस्तुत शोध में सवाई माधोपुर की आठ तहसीलों में आने वाले विभिन्न जनजातीय (मीणा) बहुल गाँवों का सर्वेक्षण कर उनके लोकसंगीत की जानकारी एकत्रित की गई है जिससे संगीत के विद्यार्थियों को ही नहीं अपितु समाज के लोगों को भी जनजातीय लोकगीतों की सटीक जानकारी उपलब्ध हो सकेगी।

अतः उपरोक्त शोध कार्य के समय सैद्धान्तिक पक्ष के अध्ययन के साथ–साथ जनजातीय व्यवहारिक पक्ष का आंकलन कर लोकगायकों तथा लोकसंगीत के विशेषज्ञों के साक्षात्कार के माध्यम से जानकारी एकत्रित की गई है। क्योंकि सामान्यतः ''कन्हैया'' और ''हैला ख्याल'' जैसी जानजातीय लोकगायकी को एक समान ही समझा जाता रहा है। यह शोध ऐसी गायकियों के अन्तर को बताने में भी उपयोगी सिद्ध होगा और आशा है आगे किए जाने वाले शोध कार्यों हेतु उपयोगी रहेगा।

सारांश

सारांश

लोक के तत्व, कला की रचना है और कला के कारण लोक की सहज पहचान बनती है। सामान्यतः ग्रामीण अँचलों में जो कला दृष्टिगत होती है वही 'लोककला' है। लोक कला परम्परा की सामुदायिक रचना और विरासत की जीवन्त परम्पराओं का संरक्षण स्वयं करती हैं, जो कला धरोहर समाज और समुदाय की हैं वे साझी विरासत है और सबके लिए हैं।

आदिवासियों का जीवन अनेक कलाओं से युक्त हैं उनकी संगीतकला (गायन, वादन, नृत्य) प्रशंसनीय है और उनका अपना मौखिक लोक साहित्य है। प्रत्येक आदिम जनजाति का अपना विशेष तथा परम्परागत लोक संगीत होता है जो सामाजिक संक्रमण के कारण प्रभावित होते हैं।

21वीं सदी में जो जटिल विमर्श की परम्परा आरम्भ हुई है उसी के कारण ग्राम्य और अभिजात्य वर्गों में यह बाँट दी गई, जबकि भारतीय परम्परा में समग्रता ही कला और लोक दोनों ही पहचान है।

लोक समाजों का रूप बदल रहा है, उसमें बड़ी तेजी से तकनीक, भाषा आदि का प्रवेश हुआ है लेकिन इसके बाद भी लोक में परम्परा उसकी प्रेरणा और इसी से सम्बद्ध लोक संगीत का रूप प्रभावों को ग्रहण करते हुए भी पारम्परिक रूप में जीवन्त रहते हैं।

'लुप्त होना' और 'रूप बदलना' दोनों चीजें अलग–अलग है। समय और जीवन के साथ–साथ लोक संगीत के रूप भी प्रभावित होते हैं और निरन्तर बदलते हैं – उनमें नई प्रेरणाओं से नवाचार होते रहते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन के द्वारा जनजातीय लोकगायन के ऐसे ही परिवर्तन के स्वरूप को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

'कन्हैया' जो लोकनाट्य की श्रेणी में सम्मिलित किया जाता रहा है। वर्तमान में यह केवल गायन शैली की विशेषताओं को ही प्रस्तुत करता है।

अतः इस शोधकार्य के माध्यम से इस गायनशैली की वर्तमान स्थिति – परिस्थिति को प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया है।

अध्ययन क्षेत्र –

प्रस्तुत शोध अध्ययन का विषय पूर्वी राजस्थान के डांग प्रदेश में निवास करने वाली जनजाति (मीणा) की लोक गायन शैली 'कन्हैया' से सम्बन्धित है। हालांकि समय परिवर्तन के

साथ जनजातीय विकास भी हो रहा है जिसके कारण सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही प्रभाव इनके जनजीवन में रचे बसे लोकसंगीत पर देखे जा सकते हैं।

जनजातीय लोकगायकी 'कन्हैया' के अध्ययन हेतु जनजातीय बहुल सवाई माधोपुर जिले की आठ तहसीलों के 'कन्हैया' गायन में प्रसिद्धि प्राप्त क्षेत्रों का भ्रमण कर जानकारी एकत्रित करने का प्रयास किया गया है।

उद्देश्य –

- प्राचीन कालों में इस गायन शैली की क्या स्थिति थी तथा पूर्व में इसका स्वरूप किस प्रकार का था और अब वर्तमान में किस प्रकार का है, इसकी जानकारी उपलब्ध करवाना।
- राजस्थान के अन्य लोक गायकीयों से इसकी भिन्नता की विवेचना कर तुलनात्मक अध्ययन के रूप में प्रस्तुत करना।
- जनजातीय समूह तक ही इस गायकी की सीमित होना, इसके कारणों का पता लगाना।
- निश्चित क्षेत्र में ही इसके विकसित होने के कारणों का पता लगाना।
- इसे लोक गायकी संरक्षण के रूप में प्रयास करना।
- जनजातीय लोगों के सांगीतिक ज्ञान, शैली को स्वरलिपि में संरक्षित करने के साथ इसके ऑडियो–वीडियो के माध्यम से वास्तविक स्थिति को संरक्षित कर प्रस्तुत करना।

शोध पद्धति –

प्रस्तुत शोध पद्धति, विश्लेषणात्मक एवं विवेचनात्मक होने के साथ लोक गायकों के साक्षात्कार पर आधारित तथ्यों के द्वारा प्रस्तुत किया गया अध्ययन है।

इसका केन्द्र बिन्दु राजस्थान का सवाई माधोपुर जिला है जिनमें जनजातीय बहुल क्षेत्रों का भ्रमण कर 'कन्हैया' गायन में प्रसिद्ध गाँवों के लोक गायकों के द्वारा इनके ऐतिहासिक व धार्मिक स्थिति का ज्ञान एकत्रित किया गया है।

द्वितीयक समंकों को एकत्रित करने के लिए व्यक्तिगत प्रलेख, पत्र–पत्रिकाओं के आलेख, पूर्व में किए गए शोध प्रबन्ध, लोक गायन से सम्बन्धित पुस्तकें आदि का उपयोग किया गया है।

सम्पूर्ण शोध को प्रमुखतः आठ अध्यायों में विभक्त किया गया है –

– अध्याय प्रथम में सवाई माधोपुर जिले की राजस्थान में भौगोलिक स्थिति को इंगित कर डांग क्षेत्र के परिचय को प्रस्तुत किया गया है और भौगोलिक स्थिति के कारण जनजातीय संस्कृतिकरण को प्रस्तुत किया गया है।

– अध्याय द्वितीय में जनजातीय समुदाय की उत्पत्ति, परिवेश आदि को स्पष्ट कर जनजातीय सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का लोकगायन की वर्तमान स्थिति पर प्रभाव को स्पष्ट कर सामान्य परिचय के द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

– अध्याय तृतीय में 'कन्हैया' लोक गायन शैली की स्थिति का विभिन्न कालों में विभक्तिकरण कर ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत किया गया है।

– अध्याय चतुर्थ में ऐतिहासिकता के प्रभावों तथा वर्तमान परिवेश के प्रभावों के द्वारा वर्तमान स्थिति का 'कन्हैया' लोकगायन शैली का सम्पूर्ण विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

– अध्याय पंचम के द्वारा अन्य जनजातीय लोक गायकीयों का विवरण प्रस्तुत कर तुलनात्मक विवरण के रूप में राजस्थान की अन्य लोक गायकियों व लोकगीतों को भी प्रस्तुत किया गया है।

– अध्याय षष्टम् के माध्यम से 'कन्हैया' लोक गायन शैली को जनजातीय सांगीतिक स्वरलिपि को शाब्दिक रूप में संग्रहित किया गया है।

– अध्याय सप्तम में ऑडियो–वीडियो के द्वारा इसके वर्तमान स्वरूप को दृश्य–श्रृव्य माध्यम के द्वारा स्पष्टतम् रूप में प्रस्तुत किया गया है।

– अध्याय अष्टम् में निष्कर्ष स्वरूप इस शोध को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया जो आगे भी ऐसे विषयों से जुड़े कार्य में योगदान के रूप में फलीभूत सिद्ध होगा।

समस्याएँ एवं सुझाव –

ऐसे विषयों के अध्ययन कार्य में अनेक समस्याऐं भी आती है जिनमें प्रमुखतः

– आँकड़े एकत्रित करने हेतु निश्चित क्षेत्र में जाकर समस्या से अवगत होना चाहिए।

– जनजाति जैसे समुदायों का अन्तर्मुखी होना बड़ी समस्या है क्योंकि इनसे उचित एवं सटीक जानकारी एकत्रित करना कठिन कार्य है।

- वास्तविकता में ऐसे विषयों में प्रामाणिकता स्पष्ट करना एक अत्यधिक कठिन कार्य है क्योंकि ऐसे विषयों से सम्बन्धित लिखित प्रमाण उपलब्ध नहीं हो पाते, अतः प्रामाणिकता के लिए ऐतिहासिक ग्रन्थों की उपलब्धता न होना एक प्रमुख समस्या है।

- छिपी हुई या समाज की पहुँच से दूर ऐसी लोक गायकियों को शोध विषय के रूप में चुना जाना आवश्यक है।

- वास्तविक स्वरूप की पहचान स्पष्ट रूप से करने के लिए विषय विशेषज्ञों के साथ–साथ लोक कलाकारों से सटीक जानकारी एकत्रित की जानी चाहिए, क्योंकि वास्तविकता और प्रामाणिक रूप से उचित जानकारी उन्ही से प्राप्त हो सकती है।

- मौखिक रूप में उपलब्ध इतिहास को लिखित प्रमाण के रूप में प्रस्तुत करना ऐसे शोध कार्यों की बड़ी उपलब्धता हो सकती है।

उपर्युक्त शोध कार्य के माध्यम से ऐसी लुप्त लोक कलाओं के संरक्षण में भी योगदान होगा। अतः ऐसे विषयो से सम्बन्धित शोध कार्य करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है।

प्रस्तुत शोधकार्य का संगीत क्षेत्र के साथ सामाजिक योगदान भी है। इससे संगीत के विद्यार्थियों को राजस्थान की विशेष रूप से जनजाति में ही प्रचलित होने की जानकारी उपलब्ध हो सकेगी तथा इसके माध्यम से 'कन्हैया' लोकगायन शैली के संरक्षण के लिए एक महत्वपूर्ण पहल भी साबित होगा।

सन्दर्भ
ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

ग्रन्थ –

1. सक्सैना, राकेश बाला, बृज के देवालयों में संगीत परम्परा;संगीत कार्यालय हाथरस (उ.प्र.)
2. मिश्र, लाल मणि, 2005, भारतीय संगीत के वाद्य लोक संगीत अंक भक्ति संगीत अंक;संगीत कार्यालय हाथरस (उ.प्र.)
3. बसन्त;संगीत विशारद, 2005,संगीत कार्यालय हाथरस (उ.प्र.)
4. जैन, विजयलक्ष्मी, संगीत दर्शन;राजस्थानी ग्रन्थकार जोधपुर (राज.)
5. शर्मा, एन.एम., 2015–16 ,राजस्थान वृहत कला एवं संस्कृति;सिखवाल पब्लिकेशन, जयपुर (राज.)
6. वत्स, सुधीर, 2006, आदिवासी भारत – जैसा देखा (संस्मरण);अलख प्रकाशन जयपुर (राज.)
7. मीणा, रमेशचन्द, 2013, आदिवासी दस्तक (विचार, परम्परा और साहित्य);अलख प्रकाशन, जयपुर (राज.)
8. शुक्ल, हीरालाल, 1974, आदिवासी संस्कृति, संगीत एवं नृत्य;बी.आर.रिथम्स, दिल्ली
9. सिंघल, प्रमोद कुमार, राजस्थान जिला दर्शन;नीलम प्रकाशन, जयपुर
10. मीणा, केदार प्रसाद, 2016, आदिवासी (समाज, साहित्य और राजनीति);अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली
11. मीणा, लक्ष्मीनारायण, 2009, मीणा जनजाति एक परिचय;हिन्दी ग्रन्थ अकादमी (मध्यप्रदेश)
12. रावत, सारस्वत, 2014, मीणा इतिहास;जयपुर (राज.)
13. भानावत, महेन्द्र, 2018, लोकनाट्य परम्परा और प्रवृत्तियाँ;उदयपुर (राज.)
14. टॉड कर्नल जेम्स, 1964, राजस्थान का इतिहास;नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर (राज.)
15. सागर, मुनि मगन;मीन पुराण, ई पुस्तकाल
16. जोधराज, हमीर रासो, ई पुस्तकालय
17. सिंह, बलवंत, मीनाज ए हिस्टोरिक सोसिओलोजिकल स्टडी, ई पुस्तकालय

18. अग्रवाल, स्वर्णलता, 2018, राजस्थानी लोकगीत, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर (राज.)
19. भानावत, नरेन्द्र, 2000, राजस्थानी बोली व साहित्य;चिन्मय प्रकाशक, उदयपुर (राज.)
20. शर्मा, कृष्ण कुमार, 2001, राजस्थानी लोकगाथा का अध्ययन;राजस्थान प्रकाशन, जयपुर
21. जैन, अनिल कुमार, 2015, डांग क्षेत्रीय विकास योजना – दिशा निर्देश (संशोधित);ग्रामीण विकास विभाग, जयपुर (राज.)
22. सोलेतोरे, आर.एन., 1939–40, न्यू इण्डियन एण्टीक्वेटीज
23. कन्निंघम, 1941, ऐन्सेन्ट इण्डियन ज्योग्राफी
24. शिखा, स्नेही, 2015, सारस्वत आकांशा, संगीत का ऐतिहासिक विवेचन
25. रजनीश गोविन्द, राजस्थान के पूर्वी अंचल का लोक साहित्य, पृष्ठ सं.–114
26. जैन, कान्ति, राजस्थान में संगीत, लोकनृत्य एवं लोकनाट्य, पृष्ठ सं.–158

शोध प्रबन्ध –

1. मीणा, अन्नु, 2017, नगरीकरण एवं हिन्दु परिवार में सामाजिक परिवर्तन : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन;समाजशास्त्र विभाग
2. मीणा, कविता, 2015, हाड़ौती अंचल का मीना जातीय लोकसाहित्य;हिन्दी विभाग
3. मीणा, जयपाल, 1985, राजस्थान का मीना जातीय लोकसाहित्य;हिन्दी विभाग
4. मिश्रा, मीनू, 2014, संगीत रत्न – पंडित दीनानाथ मिश्र व्यक्ति एवं उत्तरी भारतीय संगीत में योगदान;संगीत विभाग

पत्र–पत्रिकाऐं –

1. अरावली उद्घोष, 1994–2019, (त्रैमासिकी); गाँधी पथ, जयपुर (राज.)
2. आपणी माटी, 2017, (ई–पत्रिका); चित्तौड़गढ़ (राज.)
3. कला समय, 2018, (द्वैमासिकी); भोपाल (मध्यप्रदेश)
4. आदिवासी साहित्य, 2018, (त्रैमासिकी); नई दिल्ली
5. जनसत्ता, 2012, (साप्ताहिक समाचार–पत्र); नोएडा (उत्तरप्रदेश)

परिशिष्ट

कन्हैया लोकगीतों में प्रयुक्त शब्दार्थ

1. गणेश वन्दना एवं भवानी

बेगो	–	जल्दी / शीघ्र
बाँका	–	अपंग
बारम्बार	–	बार–बार
सुमरू	–	स्मरण करना
लाज्यो	–	लेकर आना
जाज्यो	–	जाना
आ ज्या ज्यो	–	आना

2. अमरकथा

बेकाई	–	बहकाना
तोय	–	तुझे
जौबन	–	किशोरावस्था / यौवनावस्था
खार	–	खाना
ढोला	–	पति
लपेटा	–	जाल
बल	–	घमण्ड
धन	–	पत्नी
करमन	–	तकदीर
ठाढ़ी	–	खड़ी हुई
मूँडा	–	मुँह
ढूँढा	–	घर
भस्मी	–	भगवान शंकर
गवरज्या	–	गौरी
सरको	–	उसके जैसा
दूत भड़ा	–	झूटी बात
मोकूँ	–	मुझे
अरज	–	विनती
तड़ाफड़ी	–	जलन / ईर्ष्या
हूँकारा	–	आवाज
सुआ	–	पक्षी
तिरया	–	औरत
नाई	–	तरह
बाँकू	–	उसको
खाँ	–	कहाँ
ठसक	–	मन की इच्छा
याँका	–	इसके
गुँथाती	–	चोटी बनवाना
खूटो मूँडो	–	खुला मुँह
उल्यो	–	घुसना
झटा	–	शिव के सिर के बाल
काँव	–	किसलिए

वान	–	उसने
ढिंग	–	साथ में

3. कृष्ण–अर्जुन संवाद

बासे	–	उससे
काडो	–	निकालना
टेम	–	समय
वाने	–	उसने
समसार	–	समाचार
इका	–	इसका
केक	–	कितना
न्हाबे कूँ	–	नहाने को
बूज रो	–	पूछना
बणगो	–	बन गया
को सो	–	के जैसा
ठाड़ो	–	खड़ा हुआ
गेबी	–	बदमाश
जमारो	–	जीवन
कणिया	–	कमर
कदैक	–	कभी
डील	–	शरीर
ज्याम	–	जिसमें
दीज्यो	–	देना
कैंया	–	किस प्रकार
माटर	–	मना करना
भायेली	–	सखी/सहेली
हामी	–	हाँ कहना
ऐंचाताणी	–	खींचतान
जैसूँ	–	जिससे
सटाटी	–	सम्पूर्ण
पून्यू	–	पूर्णिमा
किते	–	कहीं पर
मन्दो–मन्दो	–	धीरे–धीरे
चसको	–	नखरा
जापा म	–	गर्भावस्था के बाद का समय
दोराणी	–	देवरानी
डट्यो	–	रूकना
राड़	–	मसला/झगड़ा
सगली	–	सारी
बेसोदी	–	बुद्धि के बिना
कड़को	–	आश्चर्य चकित करना
सोसी	–	सोचना

4. देव जन्म कथा

भरबे	–	भरने
धजा	–	ध्वजा
धैला	–	धक्का
तनक	–	बिल्कुल थोड़ी
डगर	–	रास्ता
पाती	–	पत्र
पयर	–	पीहर/मायका
बनी	–	जंगल
देही	–	शरीर
खह	–	कहना
उगताई	–	निकलते ही
न्हयासूँ	–	यहाँ से
चुखा	–	पिलाना
चौक	–	घर का आँगन
बाड़ा	–	पालतू जानवर रखने का स्थान
ठोर	–	जगह
पालो	–	भाग/हिस्सा
कुमलाय	–	मुरझाना
बसकी	–	सामर्थ्य
लोठा	–	अमीर
धूजतो	–	कंपकपाना
पाड़ो	–	अलग
सुता	–	पुत्री
औतारी	–	अवतार
गरड़ा	–	कुष्ठ रोग/रोग
फरवट	–	तुरन्त
डलक	–	छूटी हुई
फरी या म	–	घेरदार वस्त्र
पोली	–	घर का मुख्य द्वारा
अटारी	–	छत के ऊपर
अगाड़ी	–	आगे
धिलक	–	चमकना
बेदि	–	हवनकुंड
भंवर	–	फेरे

5. द्रोपदी चीर हरण –

जाड़ो	–	सर्दी
गाड़ो	–	जोर से
बूजूँ	–	पूछना
मनटिन	–	क्षण भर
हेरो	–	खोजबीन

बरदानी	–	वरदान देने वाले
पसार्‌या	–	फैलाना
न्याली	–	जंगली जानवर
न्यारी	–	अलग से
आला	–	पानी
जात	–	इज्जत
केस	–	बाल
पूँच्यो	–	पहुँचना
बेगो	–	जल्दी
चेरन	–	चेहरा
घसड़ी	–	घसीटना
पाछे	–	बाद में

प्रकाशित
शोध पत्र

ISSN (P) : 2321-290X * (E) 2349-980X
Peer Reviewed
VOL-5* ISSUE-12* August- 2018
RNI No. : UPBIL/2013/55327

Srinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika

The Research Series

द्विभाषीय - मासिक

Shrinkhala

श्रृंखला

A Multi-Disciplinary International Journal

Indexed with Google scholar

Impact Factor
SJIF = 5.689
GIF = 0.543
IIJIF = 6.038

Shrinkhala UGC approved listed

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-12*August- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

ढूँढ़ाड़ का संघर्षरत जनजातीय लोकगायन

अनीता मीणा
शोध छात्रा,
संगीत विभाग,
जानकी देवी बजाज कला महाविद्यालय,
कोटा विश्वविद्यालय,
कोटा

सारांश

जंगलों और पहाड़ी क्षेत्र तथा दुर्गम क्षेत्रों में रहने वाले निवासियों को आदिवासी समाज के रूप में जाना जाता है। जनजाति (tribe) वह सामाजिक समुदाय है जो राज्य के विकास के पूर्व अस्तित्व में था या जो अब भी राज्य के बाहर है। जनजाति वास्तव में भारत के आदिवासियों के लिए इस्तेमाल होने वाला एक वैधानिक पद है। भारत के संविधान में अनुसूचित जनजाति पद का प्रयोग हुआ है।

भारत में आदिवासियों का निवास जितना पुराना है उतनी ही पुरानी उनकी सभ्यता एवं संस्कृति रही है। यह आदिवासी परम्पराऐं पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप से हस्तान्तरित होती रही है। इनके लोक गीतों में जीवन की सादगी, अनुभव की ताजगी और जातीय आत्माभिमान झलकता है।

मुख्य शब्द : ढूँढ़ाड़, कन्हैया, वाद्य यंत्र, समाज, जनजाति, गायन।

प्रस्तावना

भारत में राजस्थान पुरातन काल से ही विभिन्न कला और संस्कृतियों से समृद्ध रहा है। जिस प्रकार इन्द्रधनुष संसार के सभी रंगों को अपने में समाहित कर एक सौन्दर्य स्वरूप में हमें दिखाई देता है ठीक उसी प्रकार राजस्थान की विविध लोक कलाऐं इसके धरातल स्वरूप के साथ सांस्कृतिक सौन्दर्य को भी और अधिक सुन्दरता प्रदान करती है।

लोक कला मनुष्य के सभ्य समाज की प्रारम्भिक सीढ़ी है। 21वीं सदी भले ही कम्प्यूटर युग का रूप ले चुकी है परन्तु फिर भी लोक मानस में अपनी पुरातन संस्कृति कई रूपों में आज भी जीवित है।

राजस्थान के सन्दर्भ में भी यह स्पष्ट रूप से दिखाई दे जाता है और इसी श्रृंखला में एक विशेष जनजातीय लोकगायन "कन्हैया" यहाँ के लोक मानस में आज भी सुरक्षित है यहाँ कई जनजातियाँ निवास करती हैं जो अपनी संस्कृति को सभ्य समाज के बीच संजोये रखने का प्रयास कर रही हैं।

प्रदेश की प्रमुख जनजातियों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखने वाली "मीणा" जनजाति "कन्हैया" लोक गायकी के संरक्षक के रूप में हमें दिखाई देती है। मीणा आदिवासी बहुल क्षेत्र पूर्वी राजस्थान में इस गायकी का प्रमुखतया गायन किया जाता है। लोक गायकों तथा पौराणिक जानकारों और लोक कथाओं के अनुसार इस गायकी का प्रारम्भ या उद्भव श्रीराम के सुपुत्रों लव तथा कुश के द्वारा किया गया।

"कन्हैया" एक भक्ति प्रधान गायकी है। पढ़े–लिखे नहीं होने के बावजूद धार्मिक ज्ञान को इस जनजाति के लोग इस लोक गायकी के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। यह एक समूहगान के रूप में गाया जाता है। यों तो क्षेत्र की सभी जातियाँ सुनती समझती हैं लेकिन इस पर पकड़ केवल मीणाओं की ही है।

"कन्हैया" को वर्तमान समय में राजस्थान के कुछ प्रमुख जिलों– सवाई माधोपुर, करौली, टोंक, दौसा, जयपुर, अलवर में ही गाया जाता है। इसके गायन को समूह द्वारा निम्न भागों में विभक्त किया जाता है–

भवानी

"कन्हैया" प्रारम्भ करने से पूर्व गायक इसके माध्यम से अपने ईष्ट देवों का स्मरण करते हैं और तत्पश्चात् अपना गायन आरम्भ करते हैं।

ठाढ़ी झड़ी

इसमें गायक दल हाथ पकड़ कर एक साथ खड़े होकर कथा को छोटे रूप में गाकर बताते हैं। इसके माध्यम से जो कथा गायी जाने वाली होती है उसका परिचय करवाया जाता है।

बैठक

ठाढ़ी–झड़ी की समाप्ति के बाद सम्पूर्ण दल नीचे बैठकर अपना नियत स्थान लेते हैं।

बोल

तत्पश्चात् दल दो भागों में विभक्त हो जाता है इन्हें (1) चाँदा और (2) भींत नामों से पुकारा जाता है।

चाँदा

आमने–सामने बैठते हैं।

भींत

एक सीधी पंक्ति में दीवार के समान बैठते हैं।

पद

इसको सम्पूर्ण दल एक साथ गाता है, मेड़ियों के द्वारा बोल बताकर दल को प्रारम्भ करने का संकेत दिया जाता है।

दुबेला

इसका गायन दोनों दल बारी–बारी से करते हैं। इसके गायन के समय एक प्रतियोगिता के समान प्रदर्शन होता है।

झोला

यहाँ गाने की राग/धुन परिवर्तित हो जाती है जैसा कि नाम से ही ज्ञात होता है कि झूले के समान धीरे और धीमी गति से इसे गाया जाता है।

झड़ी

अब अन्तिम भाग में दोनों दल (चाँदा और भींत) द्रुत लय में एक साथ इसे गाते है

कन्हैया के इन भागों को मिलाकर एक डट्टा बनता है फिर कथा के अनुसार डट्टे गाये जाते है।

पौराणिक कथा को प्रस्तुत करने के लिए सामान्यतः 5 से 8 पदों का प्रयोग किया जाता है। प्रमुखतया यह एक लय प्रधान गायकी है जिसमें तीनों लयों (1) विलम्बित लय (2) मध्य लय (3) द्रुत लय का सम्मिलित स्वरूप दिखाई देता है।

इसी क्रम में जब कन्हैया गायन होता है तो पूरे गाँव के लोगों में से 70–80 लोगों की टीम सम्मिलित होती है। जब गायन प्रारम्भ होता तो विपक्षी टीमों के लोग इनकी कथा के शब्दों को पकड़ने के लिए लालायित एवं ध्यानपूर्वक सुनते हैं। शब्दों का ऐसा तालमेल एवं सामंजस्य रहता हैं कि लोग कहते हैं कि मानों ये घटनाओं के घटित होने के समय स्वयं मौजूद रहे हों अर्थात् कथा में सजीवता का चित्रण किया जाता है।

उदाहरण के रूप में कन्हैया गायन की एक कथा इस प्रकार है– एक समय की बात हैं जब अर्जुनमोरा नामक स्थान पर गए और वहाँ पाण्डव अश्व वेदी यज्ञ कर रहे थे जिसके लिए एक घोड़े को दिग्विजय करने के लिए छोड़ रखा था। जब रतन कंवर जो कि मोरध्वज राजा के सुपुत्र थे ओर केवल पाँच वर्ष के थे, ने जब घोड़े को देखा तो उसे पकड़ लिया। रतन कंवर द्वारा अश्व वेदी यज्ञ के घोड़े को पकड़ने पर अर्जुन के घोड़े को पकड़ने के लिए मना किया तो रतन कंवर ने कहा कि जब तुमने दिग्विजय करने के लिए छोड़ा है तो मैं तो इसे पकडूंगा ही। बहस के पश्चात् रतन कंवर अर्जुन को ही बांध कर घोड़े को राज महलों में ले गए।

जब मोरध्वज राजा ने अर्जुन को देखा तो अपने पुत्र से कहा कि पुत्र ये तो अर्जुन है इसने तो महाभारत जीता है तुम इसे पकड़ कर क्यों ले आये? यह सुनकर रतन कंवर ने अर्जुन को सिंहासन पर बैठाया और पैर धोकर चरणामृत लिया तथा उसे छोड़ दिया। इसके उपरान्त अर्जुन के मन में ग्लानी थी और भगवान श्रीकृष्ण के पास जाकर कहते हैं कि भगवान आप तो कहते थे कि तेरे जैसा वीर और भक्त कोई नहीं हैं, परन्तु मुझे तो एक पाँच वर्ष का बालक ही बाँधकर ले गया। तब अर्जुन ने पूछा कि क्या वह मेरे से भी बड़ा भक्त है भगवान बोले हाँ अर्जुन को अपनी वीरता एवं सबसे बड़ा भक्त होने का भ्रम तोड़ने के लिए श्रीकृष्ण ने अर्जुन एवं स्वयं साधु का वेश धारण कर परीक्षा लेने जंगल में पहुँचे।

अर्जुन श्री किसन मन प्यारे
साधु बन गए पूरे सारे
काहू कै नहीं पड़े पहचाने
वन के केहर ले लिए लोरे।

अर्थात भगवान श्री कृष्ण और अर्जुन ने साधु का वेश धारण कर लिया और जब जंगलों में जा रहे थे तो वन का एक सिंह आ गया और भगवान श्रीकृष्ण एवं अर्जुन को खाने की बात कही तब अर्जुन ने कहा मुझे मत खाओं मैं तो भक्त हूँ तब सिंह बोला मैं तो भक्तों को ही खाता हूँ भगवान श्रीकृष्ण ने सिंह से कहा कि ये भक्त नहीं है भक्त तो मैं आपको बताऊँगा मेरे साथ चलो अब तीनों साथ–साथ आगे चल दिए।

भर्यौ कमोजन पाणी
जे में एक पक्षी बोले वाणी
अर्जुन राम–राम पक्षी से
संशय मिट गए कुन्ती के
ऐ रे भगत तेने मेरे देखे

आगे चलकर देखते हैं कि एक पक्षी जल के पास बैठा है और तीन युगों से प्यासा है और वह पानी तब पिये जब कोई राम–राम बोलता है। भगवान श्री कृष्ण ने उसे अर्जुन को बताया और कहा कि देखों मेरे भक्त कैसे हैं और आगे बढ़ जाते है।

जाय दरवाजे पै दे दिए डेरा
है गो प्रभात नगर में हेला
अरे .....वहाँ तो आए दरबार सुन महलन से
अब कैसे बोले तो मोरध्वज राजा
मांगों– मांगों मुख से मांगों
भोजन मेरे हाथन से पावौ
यहां ही कटवैदे चौमासो
अब कैसे कह रहे केहर वन के
दे दै तेरे रतन कंवर कू मौकू
ऐसे नहीं उत्तर दे दे मौकू
मांगे जे ही दंगों रे रे.....

अर्थात श्रीकृष्ण, अर्जुन और सिंह तीनों मोरा नामक स्थान पहुँचते हैं जहाँ मोरध्वज राजा के दरबार पर जाकर डेरा डाल देते हैं और इस बात की नगर में चर्चा होती है। दरवाजे पर पहुँचने की बात सुनकर मोरध्वज राजा दरवाजे पर ही आ जाते है और तीनों से पूछते हैं आपको क्या चाहिए? अपने मुँह से मांगों और मेरे हाथों का भोजन करो और यहीं रहो। ऐसे में वन का सिंह बोलता हैं कि आप अपने रतन कंवर को मुझे दे दो और नहीं तो मना कर दो। तब मोरध्वज राजा कहते हैं कि थोड़ा ठहरो तो सही आप जो भी माँगोगे वहीं दूंगा।

अरे मत चूकै बलम हमारे
अब कै आ गए धणी तुम्हारे
ऐसे कब केहर के कसर रह जाये तो
बलमा दे दे अंग तुम्हारे
ऐ ए मत करियो लोभ
पिया मेरे बिन से

राजा उन तीनों से कुछ देर प्रतीक्षा करने के लिए बोलते हैं और अपनी रानी पद्मावती को सारी कहानी बताते हैं तो रानी ने कहा कि आप विचलित ना हों और इस मौके को हाथ से नहीं, जाने दें क्योंकि ये सबके मालिक हैं। रानी कहती हैं कि रतन कंवर से भी सिंह भूखा रह जाए तो आप अपने अंग दे देना, उनसे किसी प्रकार का लोभ मत करना।

अरे ऐ..... नहीं लेगे तो नृत्य या ढब से
आदौ कर दे तेरे हाथन से
ऐ ..... दरवाजे पर है हइयै
अररर..... ख र र र ..... चले करौंती
धीरे– धीरे ढब से
सुत की नैक दया नहीं आवै
देखौ याकी कैसी ही छतिया
हाथई हाथन से हथ राड्यौ
तमासो देखे दुनिया

अब राजा और रानी रतन कंवर को लेकर दरवाजे पर पहुँच जाते हैं और उनके सामने प्रस्तुत करते हैं परन्तु श्रीकृष्ण ने कहा कि हम इस प्रकार से उसे ग्रहण नहीं करेंगे। इसके हिस्से करके दो तब राजा करौंती चला कर अपने बेटे के टुकड़े–टुकड़े करते हैं और सारी दुनिया देखतीं रह गई कि इनकी छाती कितनी कठोर है।

ऐ..... कर लियौ मैंने हाथ हरे में
रही मैं तो साबत बात कर से
देखूँगी तोय काऊ दिन बिगत पड़े पै।

अब रानी पद्मावती कहती हैं कि मैं अपनी बात पर रही और आपको आवश्यकता पड़ने पर देखूँगी। भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन का भ्रम दूर कर दिया और मोरध्वज राजा एवं रानी पद्मावती की परीक्षा भी सफल रही।

अधिकांशतः इसमें लय संगत के लिए लोक वाद्य नौबत, घेरा आदि वाद्य यन्त्रों का प्रयोग मुख्य रूप से किया जाता है। एक विशेषता इस गायन की ये है कि वाद्य उपलब्ध हों या न हो परन्तु लय की तालबन्दी के लिए ये गायक हाथों से ताली बजाकर इसको गाते हैं।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से इस लोकगायकी का परिचय समाज से करवाना है। कई बार "कन्हैया" को इस जनजाति की अन्य गायकीयों के समान समझा जाता है इसके अन्तर को समझाने के प्रयास के साथ–साथ इसके असुरक्षित भविष्य के लिए भी समाज को जागरूक करने का प्रयास किया जाना है। राजस्थान में कई गायन शैलियाँ हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचानी जाती है उनमें इसे भी शामिल करने का प्रयास रहेगा।

साहित्यावलोकन

इस शोध कार्य के लिए लोक गायकों से सम्पर्क कर उनके साक्षात्कार के माध्यम तथा जनजाति में प्रचलित कथाओं के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। फिर भी यत्र–तत्र मिले पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से इसके सटीक होने के प्रमाण लिए गए है।

आदिवासी लोकगीत "कन्हैया" गायन के महानायक स्व0 श्री सालग्यराम मीणा की रचना (माध्यम श्री गोली मीणा की स्मृति के आधार पर) इस गायकी का स्वरूप प्रस्तुत किया गया है।

डॉ. प्रसाद ने आदिवासी लोक संगीत की पृष्ठभूमि को राझा करते हुए इसके संरक्षण हेतु चिन्ता व्यक्त की है।

निष्कर्ष

अतः यह लोक गायकी आज अपने प्राचीन स्वरूप को संरक्षित करने के लिए प्रयासरत है जिसे समाज के द्वारा ही संरक्षित करने के प्रयास करने होंगे। आज भी सभ्य समाज के साथ आगे बढ़ने की होड़ में जनजाति के लोग इस लोक संस्कृति को बचाने के लिए महत्वपूर्ण योगदान नहीं दे पा रहे हैं जिसकी अत्यन्त आवश्यकता महसूस की जा रही है। क्योंकि जनजाति का एक बड़ा भाग आज भी इसके बारे में अधिक नहीं जानता। यह केवल कुछ ही क्षेत्रों में सीमित रह गई है जिसके कई कारण सामने आते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *राजस्थान में आदिवासियों की स्थिति/ विकीपीडिया / इन्टरनेट।*
2. *मीणा, माया, 2014, "कन्हैया गायन के महानायक स्व0 श्री सालग्यराम मीणा की रचना", अरावली उद्घोष, जयपुर, आलेख पृ. सं. 12*
3. *मीणा, डॉ. केदार प्रसाद, 2012, जनसत्ता रविवारी समाचार पत्र, पृ. सं. 1–3*
4. *सवाई माधोपुर के क्षेत्रीय लोक गायकों के विभिन्न दलों के मेड़ीयाओं का साक्षात्कार।*

Multi-disciplinary International Journal

Certificate of Paper Publication

Shrinkhala

E-ISSN 2349-980X
P-ISSN 2321-290X

SJIF- 4.106
GIF-0.543
IIJIF-6.038

RNI UPBIL/2013/55327
Indexed Google scholar

Shrinkhala Ek Sodhparak Vaicharik Patrika

This is to certify that the paper titled..... "ढूँढ़ाड़ का संघर्षरत जनजातीय लोकगायन".....

Author : Anita Meena
Designation : Research Scholar
Dept. : Music
College : Janki Devi Bajaj Kala Mahavidyalaya, Kota University, Kota

has been published in our Peer Reviewed UGC approved International Journal
vol. 05 issue 12 month August year 2013
The mentioned paper is measured upto the required.

Rajeev Misra
Dr Rajeev Misra
(Editor/Secretary)

Dr. Asha Tripathi
(Vice-President)

Social Research Foundation
Non Governmental Organisation
128/170, H-Block, Kidwai Nagar, Kanpur - 208011
(Con) 0512-2600745, 9335332333, 9839074762 (E-mail) socialresearchfoundation@gmail.com (Web) : www.socialresearchfoundation.com

Reg. No. : N-1316/2014-15
Journal No. : 48796
UGC Approved

ISSN 2394-2207
November 2017-April 2018
Vol. IV, No. II
IIJ Impact Factor : 2.011

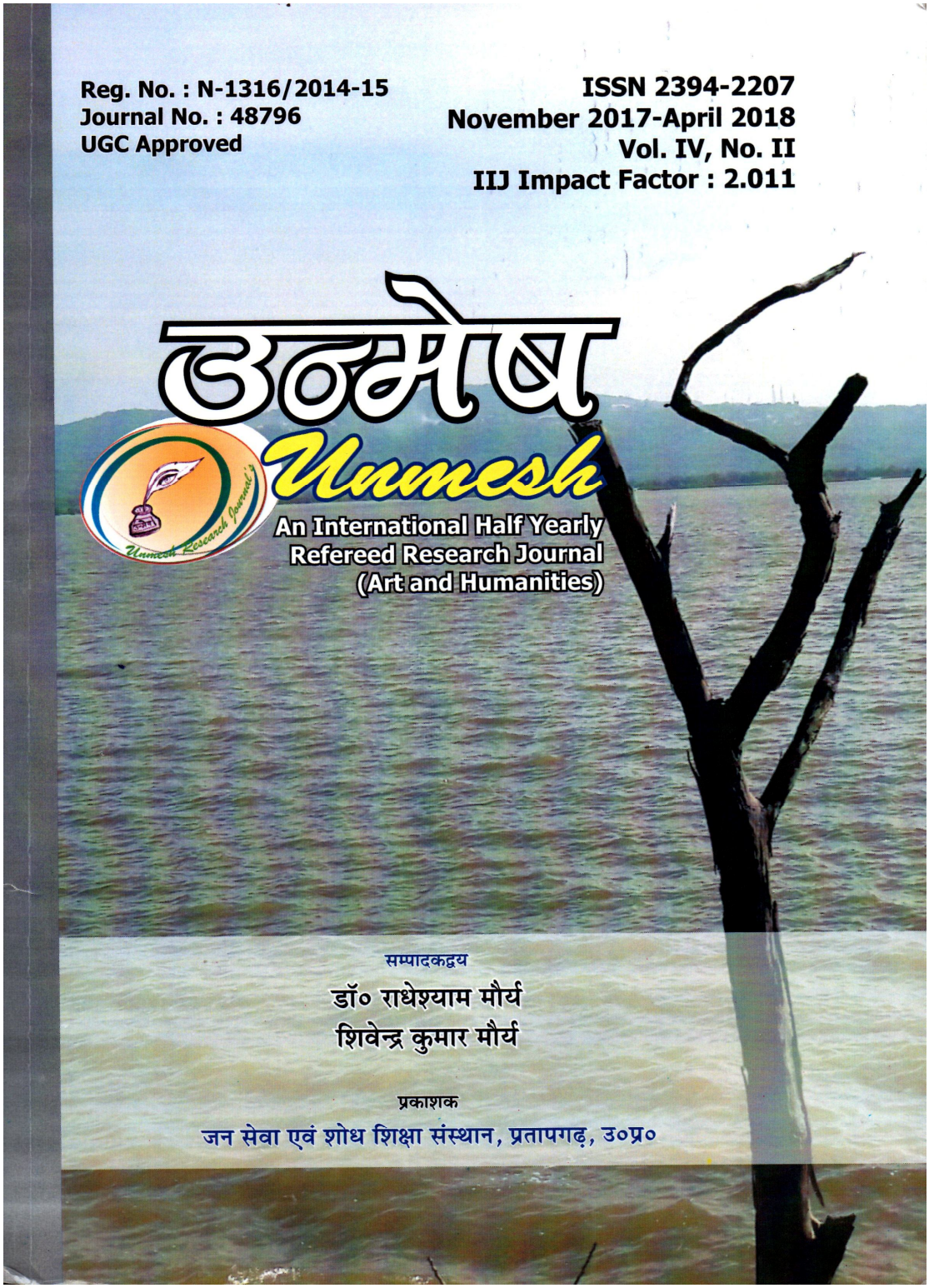

उन्मेष

Unmesh

An International Half Yearly
Refereed Research Journal
(Art and Humanities)

सम्पादकद्वय
डॉ० राधेश्याम मौर्य
शिवेन्द्र कुमार मौर्य

प्रकाशक
जन सेवा एवं शोध शिक्षा संस्थान, प्रतापगढ़, उ०प्र०

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II, Part-II
November, 2017-April, 2018
Pg. No. 203-204

आदिवासी लोकसंगीत में स्त्रियों की हिस्सेदारी

अनीता मीणा*

सारांश : प्रारम्भ में जब मनुष्य धरती पर अवतरित हुआ तो वह रिक्त पृष्ठ की भाँति होगा फिर निरन्तर जीवन की गति बढ़ती गई। मनुष्य ने धरती पर अपनी जगह निर्धारित करने के लिए परिवार जैसी संस्था विकसित की तब यह संस्था और उसकी इच्छाएँ साथ–साथ अपना आकार बढ़ाती रही। उन इच्छाओं की संतुष्टि या पूर्ति हेतु उसने तरह–तरह के जतन कर उन्हें अपने जीवन और संघर्ष के साथ सीधे जोड़ा। वह घर बनाने, उदर भरण के साधन तथा इच्छा और मन–आत्मा को तृप्त करने के लिए अलग–अलग कोशिशों से उनकी कई धुनें, बोली, भाषा और गीतों को गुनगुनाने में सक्रिय रहा। आदिवासी लोक में साहित्य सहित विविध कला माध्यमों का विकास तथाकथित मुख्यधारा से पहले हो चुका या लेकिन वहाँ साहित्य सृजन की परम्परा मूलतः मौखिक रही। जंगलों से खदेड़ दिए जाने के बाद भी आदिवासी समाज ने इस परम्परा को अनवरत जारी रखा।

संकेताक्षर : स्त्री–पुरूष भेद, आचरण पद्धति, रूढ़ि, परम्परा, मन–प्रवृत्ति, लोक गीत, सुड्डा, हैला, ख्याल, उच्छांटा, रसिया।

प्रस्तावना : आदिवासियों का जीवन अनेक कलाओं से युक्त है उनकी चित्रकला, संगीतकला, नृत्य, गायन आदि कलाएँ प्रशंसनीय है, उनका अपना समृद्ध लोक साहित्य है जो लोक कथाओं, लोकगीतों तथा लोकोक्तियों से सुसज्जित है। एक आदिम जनजाति का अपना विशेष तथा परम्परागत लोक–साहित्य है जो विविधताओं से परिपूर्ण है। इनके लोकगीत परम्परा से गाये जाने वाले गीत हैं। प्रत्येक गीत के पीछे श्रद्धालु मन–प्रवृत्ति, आचरण पद्धति, सामाजिक संक्रमण, ईश्वर–परस्ती, अंधविश्वास, रूढ़ि परम्परा, संस्कृति होने वाले नवीन बदलाव, शहरीकरण, स्त्री–पुरूष भेद, रिश्तों–नातों से संबंधित अनेक बातें दिखाई देती हैं। इनके गीतों का उद्देश्य अनन्य भाव से शरणागत होना और निष्काम कर्म करना है। इन लोकगीतों में आदिवासियों के मन के प्रतिबिम्ब साफ देखे जा सकते हैं।

वर्तमान में मीणा आदिवासी बहुल क्षेत्र पूर्वी राजस्थान में एक लोकगीत "सुड्डा" खासा चर्चा में है। हालांकि लोकगीत इस क्षेत्र में भी बाकी दुनिया की तरह सदियों से गाए जा रहे हैं। इनके कई रूप है। जैसे :– हैला, ख्याल, पद, रसिया, उच्छांटा और कन्हैया। यों तो क्षेत्र की सभी जातियाँ इन गीतों को सुनती, समझती है लेकिन इन पर पकड़ कुछ खेतिहर जातियों जैसे :– मीणा और गुर्जर की रही है। गुर्जरों ने विशेषकर "रसिया" गीतों को विकसित किया और मीणाओं ने "पद" और "उच्छांटा" को।

"उच्छांटा" गीत मीणाओं के प्राचीनतम ज्ञात गीत है। मीणाओं के संस्कृतिकरण के बाद इन्हें सभा या ऊंची आवाज पर गाँव में गाने पर पाबंदी लगा दी गई क्योंकि सामाजिक दशाओं के साथ ये मानव के उन भावों का भी प्रतिनिधित्व करते हैं जिन्हें तथाकथित सभ्य समाज अश्लीलता कहता है। "सुड्डा" लोकगीतों का चलन नया है, इन्हें केवल महिलाएँ गा रही हैं। ये पुरूषों के गीतों जैसे – हैला ख्याल, पद, रसिया आदि का मिश्रित रूप है। इनमें गाई जा रही कथाएँ अधिकतर रामायण, महाभारत और अन्य मिथिकीय प्रसंगों से गढ़ी गई है। छोटी कथाएँ और बीच के कुछ–कुछ प्रसंग लोक से लिए जाते हैं।

एक तथ्य यह भी है कि "सुड्डा" गीतों की शुरूआत पुरूषों ने की थी लेकिन वे महिलाओं के गीतों की तरह चर्चित नहीं हो सके इसलिए पुरूषों ने इसे गाना बंद कर इसका विरोध करना आरम्भ कर

*शोध छात्रा, संगीत विभाग, जानकी देवी बजाज कला महाविद्यालय, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

दिया जिसका प्रमुख कारण यह रहा कि धार्मिक कथाओं के अतिरिक्त सामाजिक समस्याओं जैसे – शराबखोरी, दहेज, पत्नी त्याग, बाल–विवाह आदि विषयों को इन गीतों में सम्मिलित किया जाने लगा। लोक संगीत में "सुड्डा" को एक क्रांति की तरह देखा जा सकता है। "सुड्डा" गीतों में पहले मीणा स्त्रियों को इस तरह गाते–नाचते नहीं देखा गया है। बुजुर्ग बताते हैं कि करीब सौ वर्ष पहले "उच्छांटा" गीतों को "कूदने के गीत" कहा जाता था लेकिन संस्कृतिकरण के बाद इनका नामकरण "उच्छांटा" मतलब जिनके साथ "छाँटा" यानि दूरी बरतनी चाहिए, हो गया। नुक्तों (मृत्युभोज), मेलों, शादी–ब्याह और रात्रि के साथ मनोरंजन के लिए ये गीत खूब गाए जाते थे। मुख्यधारा के सवर्ण समाज के गीतों को अपनी भाषा और लय के साथ अपनाया गया इसी तरह तैयार हुए हैं गीत "पद"। ये "पद" उस दौरान चले सुधार आन्दोलन, जो असल में आदिवासियों का धर्मांतरण था। अपने साथ रामायण, महाभारत और अन्य मिथकों वाली कथाएँ लाए इन कथाओं वाले सांमती समाज में स्त्री के खुलकर नाचने–गाने पर एक तरह से पाबंदी थी। यही स्थिति बाद में मीणा महिलाओं की भी होती चली गई।

आजादी के वर्षों बाद शिक्षा के थोड़े प्रसार के बाद जब पुरूषों की बंदिशों में थोड़ी ढील पड़ी और मीणा महिलाओं ने फिर गाना–बजाना चाहा तो उनके पास फिर वे ही अपने "उच्छांटा" गीत थे, जिन्हें वे अब भी प्रत्यक्ष में गा नहीं सकती थी। इसलिए वे अपनी प्रकृति के प्रतिकूल दुर्गा, सीता, राम इत्यादि के गीत गाने लगी। हिन्दू हो चुके पुरूषों ने इस पर कोई मनाही भी नहीं की । इन्हीं गीतों से इन महिलाओं ने "रामरसिया" गाना शुरू किया। इसके माध्यम से स्त्री मंच तक पहुँची लेकिन इसमें यह शर्त थी कि उन्हें मंच पर सावधान की मुद्रा में गाना होता था, वे मंच पर नाच नहीं सकती थी। "सुड्डा" गीत इस स्थिति से एक कदम आगे है। हालांकि घूँघट अब भी रखना होता है पर अब कई महिलाएँ एक साथ मंच पर उन्मुक्त होकर नाच सकती हैं। इस तरह उन्मुक्त होकर नाचना ही अब पुरूषों को चुभने लगा है जबकि गाँव की महिलाएँ लोक गायिकाओं को "सेलिब्रिटी" के रूप में देख रही हैं।

उद्देश्य : इस अध्ययन के माध्यम से सभ्य समाज और आदिवासी समाज की स्थिति का परिचय कराने के साथ–साथ सभ्य समाज का आदिवासियों पर पड़ने वाले प्रभाव को साझा करना है। जो आदिवासी प्रारम्भ से ही किसी प्रकार का भेद नहीं समझते थे और एक समानता सभी (स्त्री–पुरूष) के बीच मानी जाती रही उस पर सभ्य समाज की रूढ़ियों ने अत्यधिक प्रभाव डाला जिसके कारण वर्तमान में इनकी और अधिक दयनिय स्थिति होती प्रतीत होती है। इनके संघर्ष और जीवन के प्रतिबिम्ब को उजागर कर सही दिशा की ओर अग्रसर करने का प्रयास इस शोध के माध्यम से किया जाना है।

निष्कर्ष : हालांकि यह सत्य है कि आदिवासी सभ्य समाज से भिन्न रहा है और अपनी सभ्यता और संस्कृति के कारण अलग होने के साथ ही निम्न भी समझा जाता है परन्तु आज इन्हीं की संस्कृति एक समाज की त्रुटियों सुधारने के लिए उपयोगी सिद्ध हो रही है क्योंकि इनकी लोक सभ्यता और संस्कृति समाज में व्याप्त कुरीतियों का विरोध करने में कारगर सिद्ध होती नजर आती है। कभी–कभी अशिक्षित, असभ्य आदिवासी अपने लोकसंगीत के माध्यम से ऐसे संदेश भी देते है कि सभ्य समाज भी उन पर विचार करने को मजबूर हो जाता है।

सन्दर्भ :

1. श्रीवास भँवरलाल, 2018, संपादकीय, कला समय, पृ. 1
2. Bhaskar. Com, 2012,"कन्हैया दंगल में श्रोता भाव विभोर" (Bhaskar.Com India limited)
3. मीणा डॉ. केदार प्रसाद, 2012,"सुड्डा और स्वाभिमान" जनसत्ता, पृ. 1,3
4. सिंह डॉ. जय श्री, 2012,"आदिवासी लोकगीतों में जीवन दर्शन" अरावली उद्घोष, पृ. 17,18
5. गामीत श्री अनिल पी., 2013, "आदिवासी गामीत समाज और संस्कृति " अरावली उद्घोष, पृ. 36,41
6. राजस्थान में आदिवासियों की स्थिति विकिपीडिया/इन्टरनेट
7. स्थानिय आदिवासी लोक संगीत के लोक कलाकारों के द्वारा बताया गया इतिहास का सार (साक्षात्कार के माध्यम से)
8. बैफलावत प्रभूनारायण आदिवासी लोकनृत्य के लोककलाकार का साक्षात्कार

***

ISSN- 2394 - 2207

Unmesh

International Refereed Research Journal

Published by : Jan Seva Evam Shodh Shiksha Sansthan, Pratapgarh

Ref. No Vol. IV, No. I, Part-II November, 2017-April 2018 **Date- 15-04-2018**

CERTIFICATE OF PUBLICATION

This is to certify that the research paper given by **Anita Mina**, Researcher, Faculty of Commerce Department, Aadish Shishu Mandir H.S. School Bedia, entitled **"आदिवासी लोकसंगीत में स्त्रियों की हिस्सेदारी"** had been published in **Unmesh : An International Refereed Research Journal**-ISSN-2394-2207, Vol. IV, No. I, Part-II November, 2017-April 2018 published on 15/04/2018.

With best wishes,

You're sincerely

25/9/18

(Shivendra Kumar Maurya)
Editor

RAJASTHAN SOCIOLOGICAL ASSOCIATION

XXV International Conference

on

Contemporary India : Prospects, Challenges and Responses

20-21 December, 2018

Govt. Arts Girls College, Kota (Raj.)

CERTIFICATE

This is to certify that अनिता मीना, शोधार्थी

of कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

.....has participated / Presented a Paper / chaired /

Co-Chaired / Convened a session entitled.....

आदिवासी लोकगीत का विकास एवं

चुनौतिया

in **XXV** International Conference of R. S. A.

held at Govt. Arts Girls College, Kota (Raj.)

Dr. Anita Gupta	Pro. S.C. Rajora	T.N. Dubey	Dr. Subodh Kumar
Principal	President	Secretary R.S.A.	Organizing Secretary

unicef
for every child

S.S. JAIN SUBODH P.G. (AUTONOMOUS) COLLEGE

Rambagh Circle, Jaipur, Rajasthan

National Conference
on
Strengthening Society Through
Gender Equality and Protection of Child Rights

11th - 12th January, 2019

CERTIFICATE

This is to certify that Prof. / Dr. / Mr. / Ms. Aneeta Meena (Research Scholar)

from J.D.B Kanya Mahavidyalaya participated in

deliberation at the National Conference held from 11th-12th January, 2019 as a registered delegate.

He / She also presented a paper entitled Sabhya Samaj se Pichda hua Janjaliya Loksangeet

Prof. K.B. Sharma
Principal

Dr. Ranjita Singh
Conference Convener

साक्षात्कार

- प्रभुनारायण बैफलावत (लोककलाकार)
- रामलाल मीणा (लोकगीत 'कन्हैया' के मेडीया)
- मीठालाल मीणा (लोकगीत 'कन्हैया' के मेडीया)

एक साक्षात्कार : लोक कलाकार प्रभुनारायण बैफलावत के साथ

प्र.1 आपका जन्म कब व किस स्थान पर हुआ?

उ. मेरा जन्म 1 अगस्त, 1974 को गाँव वास भगवतपुरा तहसील कोटखावदा जिला जयपुर में हुआ था।

प्र.2 अपने परिवार के बारे में जानकारी दीजिए?

उ. मेरे पिता किसान है, मेरी पत्नी और मैं दोनों सरकारी पदों पर कार्यरत है। हमारे दो पुत्रियाँ नेहा और निकिता है।

प्र.3 लोक कला से आपके जुड़ाव का क्या कारण है?

उ. ग्रामीण परिवेश में रहने के कारण प्रारम्भ से ही पारिवारिक लोक संस्कृति के प्रति झुकाव रहा है साथ ही मेरी पत्नी की रूचि भी इस क्षेत्र में रही है इसलिए हमारा जुड़ाव है।

प्र.4 लोक संगीत के बारे में इतनी जानकारियाँ कहाँ से प्राप्त की है, आपने?

उ. कुछ जानकारी पुस्तकों के माध्यम से, कुछ विद्वानों से तथा लोक कलाकारों के सम्पर्क साथ ही समाज के बड़े–बूढ़े व्यक्तियों से जानकारियाँ प्राप्त करता रहता हूँ।

प्र.5 लोकगीतों के नृत्य कलाकार होने के साथ–साथ आप इनका गायन भी करते हैं?

उ. हमारी जाति संगीत प्रेमी जाति रही है इसलिए लगभग सभी जनजातीय लोगों को लोकगीतों का संगीत प्रिय है। इसीलिए हम भी इसमें रूचि रखते हैं फिलहाल तो अभी हम अपने चैनल पर नृत्य ही हम कर रहे हैं परन्तु गायन अन्य कलाकार ही करते हैं।

एक साक्षात्कार : मेडीया रामलाल मीणा के साथ

प्र.1 आपका जन्म स्थान कहाँ है?

उ. मेरा जन्म जिला सवाई माधोपुर के बौंली तहसील के खिरखड़ी गांव का है।

प्र.2 आपकी उम्र कितनी है?

उ. 52 वर्ष

प्र.3 ''कन्हैया'' लोकगीतों को आप कब से गा रहे हैं?

उ. 8–9 वर्षों से

प्र.4 ''कन्हैया'' लोकगीतों को आपने कहाँ से और कैसे गाना सीखा?

उ. हमारे गाँव के लोगों ने कौशाली गाँव के हंसराज मीणा (मेडीया) जी से इसकी विधिवत शिक्षा प्राप्त की है।

प्र.5 विधिवत शिक्षा क्या है?

उ. जो व्यक्ति इस गायन का जानकार होता है उसी से इसका गायन सीखा जाता है जिसके लिए वह व्यक्ति अन्य गाँव में प्रवास करता है और लगभग 25 से 30 दिनों तक इसका अभ्यास करवाता है।

प्र.6 ''कन्हैया'' लोकगीतों को दूसरे गाँवों में जाकर क्यों गाया जाता हैं?

उ. जनजाति (मीणा) के लोग समाज के अन्य लोगों से इन गीतों के माध्यम से आपसी सम्पर्क बनाए रखते हैं, और ऐसे दंगलों के आयोजन की वजह से इनका आपसी मेलजोल बना रहता है। साथ ही परम्परा के साथ धार्मिक ज्ञान की प्राप्ती भी इस लोकगायन के माध्यम से प्राप्त करते हैं।

एक साक्षात्कार : मेडीया मीठालाल मीणा के साथ

प्र.1 आपके गाँव का नाम क्या है?

उ. मेरे गाँव का नाम मलारना चौड़ है।

प्र.2 आपकी उम्र कितनी है?

उ. 80 वर्ष

प्र.3 आपने शिक्षा कहाँ तक प्राप्त की है?

उ. 10वीं तक

प्र.4 आपने 'कन्हैया' लोकगीतों को कहाँ से गाना सीखा?

उ. अपने पिता से

प्र.5 आपके पिता ने कहाँ से सीखा?

उ. उनके पिता से यानि मेरे दादा से

प्र.6 तो क्या आप भी अपने पुत्रों को ये सिखा रहे हैं?

उ. हाँ, जिनकी रूचि है वो ही सीखते हैं।

प्र.7 तो क्या सब नहीं गाते?

उ. नहीं, अब कोई–कोई ही गाते हैं।

प्र.8 इसकी कोई खास वजह?

उ. पढ़ने–लिखने शहर चले जाते हैं, नौकरियाँ दूसरी जगह करते हैं तो नहीं सीख पाते। और अबकी पीढ़ी में इतनी रूचि भी नहीं है।

वर्तमान में सवाई माधोपुर के जनजाति (मीणा) की कुछ सांगीतिक एवं सांस्कृतिक झलकियाँ

विशाल सुड्डा दंगल
ग्राम पंचायत - तलावड़ा
में पधारने पर
आपका हार्दिक